# ओ३म् नाविल

एक विचित्र, विलक्षण और शिक्षाप्रद
उपन्यास

'अ', 'उ', 'म' में जगत है, ज्ञान भक्ति और कर्म।
सृष्टी स्थिति प्रलय का, इसके भीतर मर्म॥


लेखक—
महर्षि शिवव्रतलाल एम० ए०


—:०:—


सम्पादक—
नन्दू भाई
निज़ामाबाद (दक्षिण)


—:०:—


अ० सहायक सम्पादक
देवीचरन मीतल
लेखराजनगर, अलीगढ़


—❀—


प्रकाशक—
नन्दू भाई प्रधान
शिव साहित्य प्रकाशन मंडल,
पो० दयाल नगर, अलीगढ़।

द्व० संस्करण
सं० शाका १८८५



सर्वाधिकार सुरक्षित



मूल्य २।) प्रति

# विषय सूची


| अध्याय | विषय | पृष्ठ |
|---|---|---|
| | **पहिला भाग** | |
| | भूमिका | ५ |
| ,, १ | गंगा का किनारा | ६ |
| ,, २ | प्रश्नोत्तर | १६ |
| ,, ३ | आंतरिक प्रेम | २४ |
| ,, ४ | गार की पहिली सैर | ३२ |
| ,, ५ | गार की दूसरी सैर | ३७ |
| ,, ६ | गार की तीसरी सैर | ४४ |
| ,, ७ | निराशा | ५३ |
| | **दूसरा भाग** | |
| ,, १ | विश्वास पात्र मित्र | ५८ |
| ,, २ | पंच भूत | ६५ |
| ,, ३ | लक्ष्मण और सुदर्शन | ७२ |
| ,, ४ | लक्ष्मण और ओंकारनाथ | ७८ |
| ,, ५ | मित्र से शत्रु | ८८ |
| ,, ६ | मुण्डभूषणी और लक्ष्मण | ९४ |
| | **तीसरा भाग** | |
| ,, १ | छेड़ छाड़ | १०४ |
| ,, २ | मन्दिर में प्रवेश | ११० |
| ,, ३ | मन्दिर की सैर | ११८ |
| ,, ४ | चेला | १२४ |
| ,, ५ | मंदिर का इतिहास | १३३ |
| ,, ६ | दिल की दिल में दिल से दिल को राह है | १४४ |
| ,, ७ | सफलता | १५३ |
| | **चौथा भाग** | |
| ,, १ | दलथम्मन और सुदर्शन | १६१ |
| ,, २ | गुत्थियाँ | १६८ |
| ,, ३ | नर माँस का भक्षण का मुकदमा | १७५ |
| ,, ४ | कुल रीति के अनुसार विवाह | १८१ |
| ,, ५ | भांडा फूटा | १८५ |
| ,, ६ | दैवी सहायता | १८९ |
| ,, ७ | पेशी | १९६ |
| | **पाँचवां भाग** | |
| ,, १ | मुकदमे का परिणाम | १९९ |
| ,, २ | शेष घटनायें | २०२ |

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

नाविल

# पहिला भाग

## पहिला अध्याय

### गंगा का किनारा

गंगा लहर ले रही है। लहरें आकाश की ओर सर उठाती हैं और फिर उसकी गोद में गिर कर उससे एक हो रहती हैं। लहरों के उठते रहने से पानी में बुलबुले उठते हैं और बिल्लौर के गुंबद की तरह अपनी चमक दमक दिखाकर फूट जाते हैं और इस प्रकार पानी में मिल जाते हैं कि ढूंढने से भी उनका पता नहीं मिल सकता।

गंगा के किनारे हजारों वृक्ष खड़े हुये अपने चार दिन के जीवन का दृश्य दिखा रहे हैं। पानी आया, उनकी जड़ों में समाया, मिट्टी पोली हुई और जड़ खोखली बनी। फिर यह विशाल वृक्ष अड़ाड़ाड़ा धम करते हुये गिर पड़े। पानी उछला और उनको अपने बहाव की धारा में बहाकर ले गया। वह वृक्ष अब कहां हैं? कहां गये? और क्या हुये? उनका कहीं ठिकाना भी है? इसका उत्तर कौन दे सकता है।

मिट्टी खिसक रही हैं। किनारे ढह रहे है। पानी सबको

अपनी गोद में लेकर अपने रूप में लय करता चला जा रहा है। मीलों तक यह दृश्य दिखाई दे रहा है। जहां जहाँ आँख पहुँचती है वहां वहां यही घटना देखने में आ रही है।

साथ ही साथ गंगा जिस स्थान को छोड़ती है वहाँ नये नये खेत बन रहे हैं। नये नये वृक्ष उग रहे हैं। जहाँ बांसों पानी लहराता था आज वहाँ हरियाली ही हरियाली है।

एक ओर वह बिगड़ती जा रही है। दूसरी ओर बनाती भी जा रही है। दोनों काम साथ साथ होते जाते हैं। जिस जगह के सूखे वृक्षों को पानी मिलता है वह लहलहा रहे हैं और जिन हरे भरे वृक्षों की जड़ में समा जाता है, उन्हें सुखा कर ही छोड़ता है।

द्वन्द की मिली जुली अवस्था ! यह क्या है ! क्या आग और पानी एक ही तत्व से निकले हैं ? क्या अमृत और विष दोनों का भंडार एक ही है ? पता तो कुछ ऐसा ही लगता है। केवल अधिकता और न्यूनता के दृश्य ने यह भेद बना रखा है। ओस से वृक्षों को तरावट मिलती है परन्तु जाड़े के दिनों में जब इसके परमाणुओं में घनापन आ जाता है वही ओस बर्फ और पाला बन जाती है। हरे भरे खेत के खेत सूख जाते हैं। लहलहाती खेती जल जाती है, जैसे किसी ने आग लगादी हो और वह झुलस गयी हो।

गंगा जीवन है और गंगा मृत्यु है। जीते जी लोग गंगा का पानी पीकर उसी से जीवन प्राप्त करते हैं और मरे पीछे मुर्दे या मुर्दों की राख को लेजाकर उसी में झोंक देते हैं।

यह गंगा क्या है ? सगर की संतान कपिल ऋषि के शाप से जलकर भस्म हो गई। उसके तारने के लिये राजा भगीरथ हिमालय पहाड़ से गंगा की नहर खोद लाया और उसकी धार को महासागर में ले जाकर मिला दिया। सगर की संतान तरी

या नहीं इसका किसी के पास क्या प्रमाण है। तरी होगी। इसे कौन जाने। कहने वाले कहते हैं। सुनने वाले सुनते हैं। मानने वाले मानते हैं। ऐसे लोगों की संख्या भी कम नहीं हैं जो इन पुरानी बातों पर हंसी उड़ाया करते हैं।

चाहे जो कुछ हो, लोगों को गंगा के किनारे आकर बैठने से आनन्द और शान्ति मिलती है, एकान्त का सुख प्राप्त होता है और उसकी आकाश से बातें करने वाली लहरों की तरह मनुष्य के हृदय सागर में विचारों का ज्वार भाटा आया करता है। मन्द सुगन्ध वायु के बहने से मन की कली खिल जाती हैं। चिंता और अशान्ति का कोसों पता नहीं रहता। यह एक दम सच्ची और खरी बात है। उसके सच होने में लेश मात्र भी सन्देह नहीं है और यह कम नहीं है।

यह देखो। नौका आई। कितने मनुष्य उस पर बैठे हुये उसे देख रहे हैं। यह सब प्रसन्न चित्त हैं। मीठी मीठी बातें करते जाते हैं। उनके शब्द की भनक यहां तक आ रही है। वह क्या कह सुन रहे हैं पता नहीं लगता परन्तु वह बहुत ही प्रसन्न दिखलायी देते हैं। यह प्रसन्नता इन्हें गंगा दे रही है। यह छोटे बच्चों की तरह गंगा माई की छाती पर चढ़े हुये मचल रहे हैं और गाते भी जाते हैं। लो! नौका आई भी और गई भी। वह पूर्व दिशा की ओर बही जा रही है। अब उसका भी पता नहीं रहा। आई और गई! अब एकदम आंखों से ओझल है।

यह संसार है! गंगा अपने बहाव में संसार के व्यवहार का दृश्य दिखाती है। मनुष्य उत्पन्न हुआ और मरा। जो शरीर धारण करता है मरता है। जो आता है वह जाता है। जो सोता है वह जागता है। द्वन्द जगत में द्वन्द का दृश्य हर जगह दिखलाई देता है। न यहां कोई रहा है न रहेगा। यह

गंगा भी क्या है ? माना वह हजारों और लाखों वर्ष की सही। फिर भी क्या है ? कुछ नहीं ?

अभी यह अटखेलियों के साथ लहरा रही हैं। समय आयेगा इसका नाम तक भी न रहेगा। इसकी धार की बुन्दों को देखो। अभी आंखों के सामने फुदक रही हैं। यह कहां जाती हैं या जायेंगी कौन कह सकता है। कोई भी इनके स्थान को नियत नहीं कर सकता। न यह बतला सकता है कि आगे चल कर इनकी क्या दशा होगी ! जिह्वा बंद। बुद्धि चकित ! सुनने वाले के कान बहरे ! हाथ पांव ठन्डे ! चिंता की दहकती आग ने जला दिया। सब राख हो गये। गंगा में बहाये गये। कहाँ गये ? कौन कहे !

कभी कभी सोचने में उलझन सी हो जाती है। यह क्या गौरख धन्दा है ! इसका आशय क्या है। यह न होता तो इस से हानि क्या होती ! इस से लाभ ही क्या है ! कौन किससे पूछे ! कोई ठीक उत्तर देने वाला भी तो नहीं है। यहां प्रश्न करने वाले और उत्तर देने वाले दोनों ही की एक जैसी दशा है।

आश्चर्य की बात तो यह है कि इसे सब जानते बूझते समझते और मानते हैं परन्तु अभी मृतक शरीर को जलाकर गये और अपने काम धन्दे में लगे। अज्ञानता की पट्टी आँखों पर बँधी और उद्यम करने लगे। यह क्या है ! इस खोज के पीछे कोई खिलाड़ी छुपा हुआ अपने दिखलाई न देने वाले तार के द्वारा कठपुतलियों को नचा रहा है या इसके पीछे कोई नहीं हैं ? यह भी सृष्टि का एक रहस्य है जो समझ में नहीं आता। पहिले तो इस गुत्थी को सुलझाने का किसी का ध्यान भी नहीं है और जिन्हें कुछ है वह भी अविश्वास के हाथों बिके हुये हैं।

यह मनुष्य क्या है ? जैसे और कीड़े मकोड़े मरते और खपते रहते हैं वैसे ही इसकी भी दशा है। खाया, पिया, सोया, जागा और मरा। किया धरा, करने धरने का टाट समेटा और चल बसा। लड़ा भिड़ा, मारा कूटा और नष्ट हो गया। पढ़ा लिखा, सोचा समझा और कहीं का न रहा। यह सब की दशा है।

मरने के पीछे भी कुछ है या नहीं है ? यदि है तो कोई कहता क्यों नहीं ? क्यों सब के सब गूंगे बने हुये हैं ? परन्तु कहे कौन ! जब कोई मर कर जिया हो तो आकर पता दे। लौटकर तो आज तक कोई नहीं आया। वह क्या हुआ क्या नहीं हुआ! किसी को क्या पता ! फिर कोई कहे सुने तो क्या कहे सुने ! कहने वाला काल के गाल में ! सुनने वाला मृत्यु की गोद में ! दोनों जैसे के तैसे—

"जैसे उदई वैसे भान।
न इनके पूंछ न उनके कान॥"

शब्द—"तू कौन है ? क्या तू गंगा की पुत्री है ?"

शब्द ने विचार की धारों को उलट पुलट कर दिया और उसका सिलसिला टूट गया।

उत्तर दिया गया—"तुम कौन हो ? क्या गंगा पुत्र हो ?"

"नहीं, मैं गंगा पुत्र नहीं हूं।"

"तो मैं भी गंगा पुत्री नहीं हूं।"

"प्रतीत तो ऐसा ही होता है कि तू गंगा से निकल कर उसके किनारे उसकी लड़की बन कर चुपचाप बैठी हुई इसकी लहरें गिन रही है।"

---

नोटः—बनारस और इलाहाबाद के आस पास हिन्दू ब्राह्मणों की एक जाति है जो गंगा पुत्र कहलाती है यह तख्त बिछाकर चन्दन इत्यादि लेकर बैठते हैं। जिसे चन्दन लगाते हैं वह एक आध पैसा दे देता है। यही उनकी जीविका है।

"यही बात मैं तुम्हारे लिये कह सकती हूं कि तुम गंगा से निकल कर उसके किनारे लड़के के भेष में खेल करने आये हो। परन्तु अब वह समय नहीं रहा, जब लोगों का विश्वास था कि गंगा ने राजा शान्तुन के साथ विवाह किया और उससे बाल बच्चे पैदा हुये जिनमें से भीष्म पितामह एक था। यदि तुम गंगा पुत्र नहीं हो तो मैं भी गंगा पुत्री नहीं हूँ।"

"फिर तू कौन है ?"

"जब तक मैं समझ न लूँ कि पूछने वाले को इन प्रश्नों के पूछने का क्या अधिकार है तब तक मैं क्या उत्तर दे सकती हूं! पहिले तुम बताओ, कौन हो।"

"वाह! क्या कहना है! मैंने तुझ से पूछा और उलट कर वही बात तूने मुझ पर जड़ दी।"

'ॐ तत् सत्! हरि ॐ तत् सत्!' जो जैसा कहेगा वैसा सुनेगा। इसमें आश्चर्य की बात कौनसी है! गुम्बद वाले मंदिर में जाकर जो कहोगे वही तो सुनोगे।'

'यह जगह गुम्बद दार तो नहीं! यह एक दम चौरस और गंगा का किनारा है।'

'तुम भूलते हो। यह भी गुम्बददार मंदिर ही है। गंगा के पूर्व, पश्चिम उत्तर और दक्षिण दृष्टि करो, आकाश पृथ्वी के साथ मिला हुआ गुम्बददार इमारत का दृश्य दिखाता हुआ प्रतीत होगा। मैं तो इस संसार को गुम्बददार की शक्ल का मन्दिर समझ रही हूँ। यहाँ जो जैसा कहता है वैसा ही सुनता है। उतर कर वही शब्द कानों में आते रहते हैं।

'क्या तू पंडिता है जो इस प्रकार कवियों के अलंकार में बात चीत करती है ?'

'यही प्रश्न मैं तुम से कर सकती हूँ।'

'तू यहाँ अकेली बैठी हुई क्या कर रही है ?'

'लो अभी तक एक प्रश्न का उत्तर तो मिला नहीं और दूसरा प्रश्न पूछ बैठे ।'

'तू उत्तर न देगी' ?

'पहले तुम में उत्तर लेने का संस्कार और अधिकार तो हो । यों ही कोई किसी को क्या कहे !'

'क्या मैं तेरे उत्तर को नहीं समझ सकूँगा ?'

'गिनते चलिये ! यह तीसरा प्रश्न है । सच्चा उत्तर लेने वाले पल पल और क्षण क्षण पैंतरा नहीं बदला करते हैं । पहिले एक प्रश्न का उत्तर लेकर तब दूसरा प्रश्न करते हैं । नहीं तो कोई किसको उत्तर दे ! और उत्तर देने से लाभ क्या होगा और किसे होगा ! न मुझे न तुम्हें ।'

"क्यों ?'

'अनावश्यक बात चीत हो रही है । न जिसका सर न पैर । यहाँ तुम जिस काम के लिये आये हो उसे करो और अपनी राह पकड़ो । मैं जिस विचार में हूँ वही मेरे लिये बहुत है । कोई किसी राही की बातों का क्या उत्तर दे । तुम सार तत्व की ओर दृष्टि नहीं रखते किन्तु बहके बहके फिरते हो । इसलिये तुम मेरे उत्तर के अधिकारी नहीं हो और न मुझे ऐसा करना चाहिये ।'

'मैं तो उत्तर लेकर तब टलूँगा ।'

'कठिन ! महा कठिन !! असम्भव !!!'

उसी समय वह कन्या जो इस नवयुवक से बातचीत कर रही थी, गंगा के किनारे थोड़ी दूर गयी । फिर देखते देखते आँखों से ऐसी ओझल हुई कि यह देखते का देखता रह गया । कहाँ गई ? किधर गई ? कैसे गयी ? देखने वाले के मन में यह

तीन प्रश्न फिर उत्पन्न हुये जो वैसे ही रह गये। तीन प्रश्न पहिले किये थे और तीन यह ! तीन तीन मिल कर ६ होगये !

चुपचाप हक्का बक्का होकर सोचने लगा-'कहीं यह अमानुषी सृष्टि से तो नहीं थी जो आकाश से उत्पन्न होकर आकाश में समा गयी।'

यह उसका सातवाँ प्रश्न था।

# द्वितीय अध्याय

## प्रश्नोत्तर

मनुष्य स्वाभाविक नई वस्तुओं के देखने भालने और जानने बूझने की प्रबल इच्छा रखता है। नई नई बातें और नये नये दृश्य उसके चित्त को आकर्षित करते रहते हैं। मनुष्य जीवन की उन्नति भी इसी पर निर्भर है।

जब मनुष्य किसी ऐसी वस्तु को देखता है जिसकी असलियत का उसको पता नहीं है तो वह उसे विचित्र और अनौखी समझता है। यह विचित्र वस्तु उसकी आँखों के लिये नई होती है। इस दृष्टि से जो नई है, वही विचित्र और अनौखी है। और जो विचित्र और अनौखी है वही नई है।

इसे देख कर वह स्वाभाविक रूप से इसकी ओर आकर्षित होता है। और उसे जानना बूझना, सोचना समझना और प्राप्त करना चाहता है। इसी इच्छा के सिलसिले में वह उन्नति करता हुआ कुछ का कुछ बन जाता है और बहुधा उसकी त्रुटियाँ दूर होती हुई उसे पूर्ण बना देती हैं।

ऐसे लोग भी हैं जो इस विचार के नहीं हैं। उनके ध्यान न देने के कई कारण होते हैं–भय, लज्जा, संकोच और अबलता इत्यादि इत्यादि। प्रतिकूल अवस्था में पड़ जाने के कारण यह दोष उनमें आ गये हैं वरन् स्वभाव तो जैसा औरों का है वैसा ही इनका भी है।

बच्चे को देखो! जिसे देखा उस ओर ध्यान दिया, हाथ से पकड़ा और मुँह में डालने लगा। यह उस नन्हे बच्चे का स्वभाव है। अभी उसे किसी बात का पता नहीं है। जो वस्तु आंखों के सामने आई उसे पूर्ण रीति से जानना चाहता है।

यह अवस्था क्या है? इसका संक्षेप उत्तर यह है:— 'ओ३म् ब्रह्म[1], ओ३म् आत्मा[2]'।

जो ब्रह्म को समझे वह इसे भी समझे! जिसकी दृष्टि आत्मा पर होगी वह इस पर भी दृष्टि डालेगा वरन् विपरीत दशा होगी। परन्तु स्वभाव को तो किसी न किसी प्रकार अपना काम करना है। दृष्टि डालने या न डालने से उसका कार बार नहीं हो सकता।

वह लड़का था। यह लड़की थी। लड़का कई दिनों तक गंगा के किनारे आता रहा। लड़की उसे दिखलाई नहीं दी। वह मन ही मन सोच रहा था:—'यह कौन थी? क्यों बहकी बहकी बातें कर गई? कहां से आई? किधर गई? कई दिन से उसकी खोज करता हूँ और यह देखकर चला जाता हूँ। क्या आज भी निराश होकर लौट जाना होगा और मैं उसे न देख सकूँगा।

---

(१) ब्रह्म = ( वृह् = बढ़ना ) + ( मनिन् = सोचना )
(२) आत्मा = ( अत = चलना ) = ( मनिन्=सोचना )

एक बात और है। मुझे उसकी चिन्ता क्यों है। संसार में हजारों मिलते बिछुड़ते, आते जाते रहते हैं। कौन किसके पीछे पड़ता है! गंगा की धार बहती रहती है। उसे किसने पकड़ा रक्खा है! हवा के झोंके चलते रहते हैं। यह किसकी मुट्ठी में आते हैं। बुद्धि कहती है कि इसका ध्यान छोड़ो और अपने काम में लगो परन्तु मन और ही धुन में लगा हुआ है। मुझे जीवन में कुछ काम भी करना है या इसी उलझन में पड़ा रहना है। इस से तो दूर ही रहने में भलाई है।'

इस प्रकार वह सोच समझ कर और मन को समझा बुझा कर चला गया परन्तु मन भीतर ही भीतर अटखेलियां कर रहा था। उसे शान्ति कहां! फिर दूसरे तीसरे और चौथे दिन आया। वह दिखलाई नहीं दी। यह निराश होने लगा परन्तु निराशा के आक्रमण से उसमें साहस और उत्साह का आभास होने लगा।

इस घटना के कई दिन पीछे जब वह फिर गंगा के किनारे आया उसे एक टीले पर बैठी पाया। आज उसके सर पर फूलों का ताज था। उसके रूप रंग से सुशीलता की वर्षा हो रही थी। हाथ में एक लोहे का त्रिशूल लिये हुये वह गंगा की लहरों की ओर गहरी दृष्टि से देख रही थी। इसने उसके पास आकर कहा—'मैं नित्य तेरे लिये चक्कर लगाता रहा। तू कहां थी? यहाँ क्यों नहीं आई?'

उसने इसे देखा। मीठे स्वर से बोली—ओ३म् तत् सत्! तुम प्रश्न ही करते हुये आते हो। कहां थी? और क्यों नहीं आई? इससे तुम्हें क्या प्रयोजन है? मैं स्वतन्त्र हूँ। तुम्हारी तरह बन्धन में नहीं हूँ। जाओ अपने काम काज में लगो। मेरा पीछा छोड़ो। 'मान न मान मैं तेरा महमान' यह मुझे अच्छा नहीं लगता।'

'तुझे अच्छा न लगे न सही, मुझे तो अच्छा लगता है। वह उठ खड़ी हुई। यह उसकी राह में आ गया जिसमें वह जाने न पाये।

'क्या तुम मुझे रोकना चाहते हो? यह असम्भव है। परे हटो और राह छोड़ो।'

'आज तूने भी प्रश्न किया। अब हम दोनों की एक जैसी दशा हो गई।'

उसने इसे तिरछी चितवन से देखा—'जाओ! मेरे पीछे न लगो।'

'क्या तू इस भाले से मुझे डराती है?'

'फिर प्रश्न किया! यह अपनी रक्षा के लिये है। बिना आवश्यता के इससे काम नहीं लिया जाता। गंगा का किनारा! जंगली पशुओं का घर! यही कारण है कि यह मेरे हाथ में है। यह मेरा साथी है और साथी ही क्यों मेरा रक्षक भी है।'

'मालिक का धन्यवाद है! एक प्रश्न का उत्तर तो मिला! अब तू राह पर आई है।'

'फिर हुआ क्या?'

'जैसे एक प्रश्न का उत्तर मिला वैसे ही दूसरों का भी मिलेगा। स्वभाव ने पलटा खाया। मैं तुझ से बलवान हूँ। तेरे स्वभाव का परिवर्तन मेरे लिये लाभदायक होगा।'

'कैसे?'

'अब तू आप प्रश्न करने लगी। बहुत ही अच्छा हुआ। सुन! जब दो शक्तियां लड़ने के लिये सामने आ जाती हैं तो जो बलवान होती है वह दूसरे को दबा लेती है? मैं निराश हो चला था। मेरे अनुभव ने यह सिद्ध कर दिखाया कि निराशा आप अबलता की अवस्था है। यदि संकल्प शक्ति को दृढ़ कर

लिया जाये तो निराशा आप ही आप दूर हो जाती है।'

'तुम ज्ञानी और विवेकी हो।'

'और तू?'

'मैं नहीं जानती।'

'यह और भी अच्छा है।'

'क्यों?'

'तू अज्ञानी है। मैं तेरी दृष्टि में किसी न किसी रूप में ज्ञानी हूँ। ज्ञानी बलवान होता है। अज्ञानी में अबलता होती है। इसलिये तुझ पर अवश्य ही विजय प्राप्त करूँगा।'

तुमने भी एक ही कही। जब किसी से प्रयोजन हो तब यह बातें अच्छी लगती हैं। जब कोई प्रयोजन न हो तो कैसी समझ! कैसी अनसमझी। कैसा ज्ञान! कैसा अज्ञान! जाओ, अपनी राह लो। इस छेड़ छाड़ से तुम्हें कोई लाभ नहीं।'

'कौन जाने लाभ होगा या न होगा। इस पर मेरी दृष्टि अभी तक नहीं है। तुझे देखा, तेरी ओर ध्यान गया। जानने की इच्छा उत्पन्न हुई। तू कौन है? तू ने उत्तर नहीं दिया। मुझे उसका उत्तर तुझ से लेना है।'

'हरि ओ३म् तत् सत्। सम्हल कर रहो। अनावश्यक बातचीत से हानि ही होती है।'

'मैं इसे जानता हूं।'

'फिर जान बूझ कर उलझन में क्यों फँसते हो?'

'इसका मुझे न पता है न ज्ञान है।'

'फिर तुम अपनी बातों से अज्ञानी सिद्ध हो रहे हो। इस समय तुम्हारा ज्ञान कहां चला गया?'

यह लज्जित हुआ और सम्हल गया।

'ज्ञान पर परदे पड़े रहते हैं। यह परदे इक बारगी नहीं उठते। इनके बखिये उधेड़ने पड़ते हैं। सोच विचार, समझ

बूझ और काट छाँट से काम लेना पड़ता है। फिर कहीं जाकर ज्ञान होता है।'

'तो फिर ज्ञानी तो नहीं हुये।'

'मैंने समझ बूझ और ज्ञान की डींग नहीं मारी। यह तेरे शब्दहैं। तूने मुझे ज्ञानी और विवेकी बताया। यदि मैं ज्ञानी होता तो फिर तुझ से प्रश्न क्यों करता।'

'इन प्रश्नों के लिये तुमको पछताना और हाथ मलना पड़ेगा।'

'जो होने का है हो रहेगा। उसकी मुझे चिन्ता नहीं है।'

'जान जोखिम में पड़ना होगा।'

'मैं इसके लिये भी तैयार हूँ।'

'क्या तुम हठीले मनुष्य हो? हठ अच्छी नहीं होती। मैं ने केवल दो बार तुमको देखा है। तुम पर मुझे दया आती है।'

'क्यों?'

'इसलिये कि पतंगा दीपक पर जलने चला है। दाने की लालच में पक्षी जाल में फँसने लगा है। चारे पर मछलियां गिरती हैं और आप किसी के पेट का भोजन हो जाती है। वीणा के शब्द का प्रेमी सांप सपेरे की झोली में बंद हो जाता है और अपनी स्वतंत्रता से हाथ धो बैठता है।'

'तू आप रहस्य बनी हुई है! और फिर अलंकार में बात-चीत करती है। इनकी मुझे समझ नहीं है।'

'अच्छा हो इस समझ से दूर ही रहो।'

'क्यों?'

'मुझे देखो! मेरा कलेजा कैसा पत्थर का है। मुझ में नम्रता नाम को भी नहीं है। इसका कोई कारण भी तो होगा। मैं जिस संगत में रहती हूँ उसमें कड़ाई, निर्भयता और निर्दयता

है । मेरा भी वैसा ही स्वभाव बन गया है। तुम्हारी अवस्था इसके विरुद्ध है। अभी तक तुम में कोई बुराई नहीं आई है। तुम्हारा स्वभाव अब तक बच्चों जैसा प्राकृतिक है। मैं चाहती हूँ कि तुम ऐसे ही बने रहो।'

'यह पहेलियां मेरी समझ से बाहर हैं।'

'इनके न समझने में ही भलाई है और कोई होता तो अवश्य उसे मछली की तरह मछुआहे के जाल में फँसा देती। तुम पर दया आती है। क्यों आती है ? यह मेरी समझ से बाहर है।'

'पता लग गया। तू मुझ पर दयालु है इसलिये मुझे और भी अभय रहने का साहस हो रहा है। कोई और होता तो इन बातों को सुनकर डर जाता। मैं नहीं डरता और इसलिये जिस बात के जानने की इच्छा उत्पन्न हुई है, उसे क्यों न पूरी करूँ।'

'तू क्या जानना चाहता है ?'

'मैं यह जानना चाहता हूं कि तू कौन है ? और क्यों अकेली गंगा के किनारे आकर बैठती है ?'

'यह तो कोई प्रश्न नहीं है। इसका उत्तर मिला तो क्या और न मिला तो क्या ? हाँ ! यदि और कोई बात हो तो तू कह सकता है।'

इसने अपने आपको सँभाला और मन ही मन सोचने लगा—'मैं उसकी ओर आकर्षित क्यों हो रहा हूं ?'

'मेरा चित्त तेरी ओर आकर्षित हो गया है।'

'क्यों ?'

'इस क्यों का उत्तर मेरे पास नहीं है।'

'तम भल में पड़े हुये हो। मैं वह नहीं हूँ जो तुम मुझे समझ बैठे हो।'

'मैं ने क्या समझा है ? और तू कौन है ? यहां दो प्रश्न हैं। पहिले प्रश्न की ओर ध्यान देना नहीं चाहता। केवल दूसरे प्रश्न का उत्तर मुझे दे दे।'

'तुम मुझे क्या समझते हो ?'

'गंगा पुत्री, जल देवी, पवित्रात्मा, पवित्रता की रानी जिसका सिंहासन मनुष्य का हृदय होना चाहिये।'

'मैं यह नहीं हूँ। न देवी हूं न देवता हूं, न मान प्रतिष्ठा और गौरव की अधिकारी हूं और न यही चाहती हूं कि कोई मुझ से प्यार करे।'

'फिर तू कौन है ?'

'पापात्मा और चुड़ैल। यदि गंगा बहा कर मुझे अपने में मिला लेती तो मैं अपने आपको भाग्यवान समझती या यह किनारे का करारा गिरकर मिट्टी के नीचे मुझे दबा रखता तो अच्छा था। मैं इस योग्य कदापि नहीं कि मुझे कोई प्यार करे।'

'मैं समझ गया। तू महा दुखी है।'

'यह भी नहीं है। मुझ में दुख के अनुभव करने की शक्ति नहीं है। सुख दुखः दोनों की ओर न ध्यान है न इच्छा है। जैसी हूं वैसी हूं।'

'तब तो तुझे और भी मेरी सेवा की आवश्यकता होगी ?'

'मुझे किसी बात की आवश्यकता नहीं है। तुमने उतना सुन लिया। अब जाओ। मेरा पीछा छोड़ो।'

'यह असम्भव है।'

'नहीं'। अब चले जाओ। मुझे कुछ काम करना है। काम करने से न रोको। तुम्हारे यहां रहने से मेरे काम में रुकावट पड़ेगी।'

'बहुत अच्छा। मैं चला जाऊँगा परन्तु फिर तू कब मिलेगी ?'

'आज के तीसरे दिन और इसी जगह।'

'तब तो मुझे मेरे प्रश्नों का उत्तर मिलेगा ?'

'इतनी जल्दी नहीं। तुम नहीं मानते, आओ बैठो। मैं आज्ञा देती हूं परन्तु मेरे काम में बाधा मत डालना। जब मैं कहूं तब चले जाना।'

'मुझे स्वीकार है परन्तु प्रश्नों का उत्तर ?'

'मैं अपने मुख से कुछ कहना नहीं चाहती। जब मेरे कर्त्तव्य को अपनी आंखों देख लोगे, आप समझ जाओगे और घृणा से छोड़ आओगे।

वह चला गया। यह टीले पर बैठ गयी और गंगा की उमड़ती हुई लहरों को देखने लगी।

---

# तीसरा अध्याय

## आन्तरिक प्रेम

जिसने यह कहा है कि प्रेम अन्धा होता है उसने बहुत सोच समझ कर इन शब्दों को मुख से बाहर निकाला है क्योंकि इसमें सच्चाई है। बुद्धि कहती है कि राग और द्वेष में भी यही बात होती है। मनुष्य को उसकी चाट पड़ने दो, फिर यह अन्धे बन जाते हैं। जिसे किसी ने अच्छा समझ लिया संसार उसे लाख बुरा कहे परन्तु यह अच्छा समझने वाला बुरा न समझेगा और उसके बचाव की सैकड़ों बातें उसे सूझने लगेंगी। ठीक उसी प्रकार जिससे द्वेष है चाहे कोई उसे कितना

ही अच्छा सिद्ध करना चाहे यह कब मानने वाला है! प्रेम तो जादू है। यह जिसके सर पर भूत बन कर सवार हो जाता है, उसे अपने प्रेमी के नाम लेने के अतिरिक्त और कोई बात नहीं सूझती है। यह मन की अटखेलियों के कर्तव्य हैं। यहाँ बुद्धि की दाल नहीं गलती।

लड़के ने लड़की को देखा। वह माने चाहे न माने उसका मन उस पर आसक्त हो गया। लड़की ने लड़के को देखा। वह दिखाने के लिये तो बनावट करती थी परन्तु भीतर ही भीतर उस पर लट्टू हो गयी थी। दोनों रंग रूप के अच्छे थे। उनके सौन्दर्य और लावण्य ने एक दूसरे का प्रेमी बना दिया और दोनों ही प्रेम के रस्से से बँध गये।

यह घर में आकर उसका राग गाने लगा। यह उसी के नाम की माला फेरने लगी। प्रेम के होते हुये भी एक दूसरे के नाम का पता नहीं था। प्रेम इन बातों को देखता नहीं।

प्रेम न बाड़ी ऊपजे, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा रानी जो रुचे, सीस देइ लै जाय॥
प्रेम पियाला सो पिये, सीस दक्षिना दे।
लोभी सीस न दे सके, नाम प्रेम का ले॥
प्रेम प्रेम सब कोई कहे, प्रेम न चीन्हे कोय।
आठ पहर भीना रहे, प्रेम कहावे सोय॥

लड़के में छिछोरापन था। लड़की गंभीर स्वभाव की थी। दोनों के स्वभाव एक दूसरे से भिन्न थे। प्रेम का तो काम ही यही है कि भेद भाव को मिटा देता है।

दो दिन ज्यों त्यों कट गये। तीसरे दिन यह गंगा के घाट पर आया। वह बैठी हुई थी। वही बांकपन! वही सज धज वही सादगी! और वही निखार!

'तू पहिले से ही यहां आ गई?'

'तुम थोड़ी देर पीछे आये हो। मुझे आये हुये बहुत देर नहीं हुई है।'

'तुम से पहले ही आना चाहता था।'

'मैंने जल्दी से काम लिया।'

'तेरा सामना कौन कर सकता है।'

'क्यों ?'

'बिजली के कौंधे से कोई बढ़ कर हो तब तो तुझ से बढ़े।'

'तो मैं मानुषी सृष्टि से नहीं हूं। बिजली का कौंधा ठहरी।'

'बिजली में न यह चमक है न दमक है। वह तेरे सामने आती हुई लज्जित होती है। आने का साहस करे तो कैसे करे।'

'यह मुस्कराई, पहिले कभी नहीं हँसी थी। तुम तो पूरे कवि हो, कवियों के अलंकार में बातचीत करना अच्छी तरह जानते हो।'

वह बोला -- 'मैं क्या हूं क्या नहीं हूँ इसका मुझे ज्ञान नहीं है। हां अब तू जो बनायेगी मुझे बनना पड़ेगा और वही बनूंगा।'

'धुन के पक्के हो।'

'तू कहीं कच्चा न कर दे ?'

'डरते हो ?'

'नहीं ! डरता नहीं ! डरता होता तो तेरे पीछे न लगता।'

'तुमको किसने पीछे लगाया ! मैंने नहीं।'

'आरंभ तो तू ने ही किया परन्तु उसकी पूर्ति मैं करूंगा।'

'मैंने ऐसा नहीं किया। यह भी तुम्हारा ही काम था।'

'यह मैं कैसे मान लूं। न तुझे देखता न पीछे पड़ता परन्तु वादविवाद में कौन पड़े। बहुत अच्छा ! तेरा ही कहना सच सही। इसमें मेरी कोई हानि नहीं है।'

'अब क्या चाहते हो ?'

'केवल प्रश्नों का उत्तर ।'

'बस कि कुछ और ?'

वह सोचने लगा। उसकी समझ में नहीं आया कि वह क्या कहे। प्रश्न का उत्तर लेने का कोई अभिप्राय भी है या यों ही है ? उत्तर न मिले तो हानि क्या है ? और मिले तो उससे लाभ ही क्या है। वह अपनी मानसिक अवस्थाओं को समझ नहीं सका। वह कुछ कहना चाहता था परन्तु बात मुंह से न निकलती थी।

वह आप ही बोली—'प्रश्नों का उत्तर तो मैं दे चुकी।'

'क्या मैंने नहीं कहा था कि मैं पापात्मा हूं ?'

'मैं न तुझे पापात्मा कहता हूं न घृणा करता हूं।'

'फिर क्या समझते हो ?'

'देवी ! गंगा पुत्री ! और पवित्र आत्मा।'

'हां !'

'क्या इसमें भी कोई संदेह है ?'

'यह विचार आज पलट जायेगा और यह विश्वास हवा में फर्राता हुआ उड़ता हुआ दिखाई देगा।'

'असम्भव है।'

'देखा जायगा ! उसकी परीक्षा का समय निकट आ गया है। तुम नहीं मानते, न सही।'

'बहुत अच्छा ! मैं तैय्यार हूं।'

'तब मेरे साथ चलो।'

वह उठी। बोरे में कोई वस्तु कसी हुई उसके पाँव के पास रखी थी। उसे कन्धे पर उठाया, हाथ में भाले को लिया। लड़के ने बहुत हठ की कि 'बोझ मैं उठा ले चलूंगा परन्तु

इसने इसकी नहीं सुनी। दोनों साथ साथ चले। थोड़ी दूर चल कर करारे से नीचे उतरी। उसने कहा—'बहुत संभल कर आना। यह रपटीली जगह है। पाँव के फिसलने और नदी में गिरने का भय पग पग पर है। मेरा तो वर्षों का अभ्यास है। तुम्हारे लिये नई बात है। यदि गिर पड़े तो पानी में गिरकर लत पत हो जाओगे और मुझे पछताना पड़ेगा।' अब वह संभल संभल कर पाँव उठाने लगा।

इस प्रकार चलते हुये वह एक कंकरीले गार के पास पहुँचे जिसका मुँह तंग था और उसके भीतर घुप अँधेरा था।

'मैं इसी से होकर जाती हूँ। पहिले दिन जब मैं एक दम आंखों से ओझल हो गई थी, इसी में तुम्हारे देखते देखते समा गई। तुमको आश्चर्य हुआ होगा।'

'यह गुफा है। तू योगिनी है, इसका खटका मुझे पहिले भी हुआ था। मैंने तुझे इसमें जाते हुये नहीं देखा था। तेरे एकदम गुम हो जाने से मैं चकित सा हो गया था।'

यदि तुम मुझे यहां आते हुये देखते तो क्या करते?'

'मैं भी तेरे पीछे पीछे चला जाता।'

'असम्भव है, इसका पता किसी को नहीं है और कोई इसके भीतर भी नहीं जा सकता। दो ही चार गज बढ़ने पर तुम्हारे रोंगटे खड़े हो जाते और पीछे फिरने की सूझती।'

'तू परीक्षा से पहिले ऐसा नतीजा क्यों निकालती है?'

'यही उतावला पन तुझ में भी है।'

दोनों गार में साथ साथ घुसे। लड़की ने धोती की खूँट खोली, दिया सलाई और मौमबत्ती निकाली। उसे जलाया फिर उजाला होगया। गार तंग था परन्तु आगे चल कर चौड़ा होता गया था। पहिले वह कुछ न देख सका। बाद में जब आंखें

जमती गई, इसे दिखाई देने लगा। दोनों चल निकले, आगे आगे वह पीछे पीछे वह। गार के दोनों ओर मनुष्यों की ठटरियों की ढेर लगी हुई थी। एक जगह खोपड़ियां एक दूसरे के नीचे ऊपर टीले की सूरत में सजाई हुई थीं।

इस से न रहा गया, पूछा–'यह क्या है ?'

उत्तर मिला—'यह अपनी दशा आप बतला रही हैं। क्या अब भी मुझे अपने मुख से कहने की आवश्यकता है ?'

'हाँ ! आवश्यकता है। बिना कहे हुये मैं कैसे समझूंगा ! क्या साधारण मनुष्यों के डराने के लिये यही प्रबंध किया गया है जिसमें वह गुफा के भीतर आने का साहस न करें।'

'तुम विचित्र मनुष्य हो। आप ही प्रश्न करते हो और आप ही उत्तर देते हो।'

'बात तो कुछ ऐसी ही है।'

लड़की के मुँह से निकल गया—'ॐ तत्सत् !' और शब्द गुफा में गूँज उठा।

उसने पूछा—'क्या तुम डर गये ?'

उसने उत्तर दिया—'नहीं ! तू साथ न होती तो सम्भव था मैं भयभीत हो जाता।'

'तुम मुझे क्या समझ रहे हो ?'

'देवी, गंगा पुत्री और योगिनी।'

'क्या अब तक तुम्हारा यही विश्वास है ?'

'क्या इसमें भी संदेह है ?'

'आश्चर्य है। अच्छा। लो, अब सुनो। इन ठटरियों और खोपड़ियों को एकत्रित करने वाली मैं ही हूँ।'

'मैं ने इसे नहीं समझा।'

'अभी समझोगे। जल्दी क्यों करते हो ?'

लड़की ने उस बोरी को खोला जिसे वह कन्धे पर लाद लाई थी। वह एक छोटे बच्चे का मृतक शरीर था जिसमें अभी सड़ाइंध नहीं आयी थी।

उसे घृणा हुई। ईश्वर जाने उसके हृदय में क्या क्या भाव उत्पन्न हुये होंगे। फोटोग्राफी के जैसा संसार में अभी ऐसा यंत्र नहीं बना है जो मानसिक भावों का फोटो खींच कर दिखा दे। कुछ दिनों पीछे यह भी बनेगा क्योंकि मनुष्य की बुद्धि उसके पीछे पड़ी हुई है।

लड़की ने पूछा–'तुम्हारे मन में घृणा आयी या नहीं ?'

उसने उत्तर दिया—'घृणा तो अवश्य उत्पन्न हुई परन्तु मैं ने उसका गला घोंट दिया। अब मुझे घृणा नहीं रही। केवल अपने प्रश्नों का उत्तर चाहता हूं।'

'मैं यह हूँ जो तुम देख रहे हो। मैं यहाँ से गई थी। कहो उत्तर मिले या नहीं ?'

'नहीं। यह सन्तोषदायक नहीं है। सम्भव है तूने मुझे रोक रखने के लिये यह सांग रचा हो नहीं तो मुझे लड़के की लाश से क्या काम है !'

'देखने में तो बहुत भोले भाले जान पड़ते हो परन्तु वास्तव में बड़े ही गहरे मनुष्य हो। हाँ ! सच्चाई तक पहुंचने में चूक जाते हो। सुनो ! यह मृतक शरीर खाया जाता है। मांस इत्यादि नोंच खसोट कर खाने के पश्चात् खोपड़ियाँ और ठटरियाँ यहाँ लाकर इकट्ठी कर दी जाती हैं।'

'बड़े ही आश्चर्य की बात है ! यह अँग्रेजी राज्य है। क्या मनुष्यों को खाने का घृणित रिवाज अभी दूर नहीं हुआ ?'

'नहीं, यह दूर होने वाला नहीं है। तुम पढ़े लिखे मनुष्य हो तुमने सुना होगा। दो वर्ष हुये लाहौर में मोटर सवार छोटे और अबोध लड़कों को पकड़ ले जाते थे और उनका मांस पका

कर खाते थे। समाचार पत्रों में उन दिनों इसी की धूम थी। रेल में ऐसी लाशें सन्दूकों में बन्द होकर जाती रही हैं। वहाँ भी यही बात थी। पता चाहे लगे या न लगे। काम करने वाले बड़ी सावधानी से काम करते थे परन्तु यह एक दम सच्ची सच्ची बातें हैं। सभ्य देशों में भी ऐसी घटनायें होती रहती हैं और वह दबा दी जाती है। उस स्वभाव के मनुष्य अब भी कुछ कुछ पाये जाते हैं।'

'तू पढ़ी लिखी होगी तब तो इन बातों को जानती है?'

'हाँ, मैं कई भाषायें जानती हूँ। समाचार पत्र भी नित्य देखती रहती हूँ।'

यह महा चकित हुआ।

'मैं कभी न मानूँगा और न मानने के लिये तैयार हूँ कि तू मनुष्यों की लाश खाया करती है।'

'तुम्हारा कहना ठीक है। मैं ने किसी जीव का माँस अब तक नहीं खाया।'

'मुझे विश्वास है। अब और कुछ अपनी कथा सुना।'

'बस आज के लिये इतना ही बहुत है। यह गार दूर तक गया हुआ है। आगे तुमको न ले जाऊँगी। चलो तुमको घाट तक पहुँचा आऊँ। फिर कभी मिलोगे तो और सुनोगे।'

वह श्रद्धालु शिष्य के समान पीछे फिरा। यह हाथ में मोमबत्ती लिये हुये गार के मुंह तक पहुंचा गई।

# चौथा अध्याय

## गार की पहली सैर

लड़का घर पर आया। आज के दृश्यों को देख कर उसके मन में घृणा उत्पन्न हुई। वह आज प्रसन्न नहीं था। ऐसा अपवित्र दृश्य उसनें अपनी आंखों पहिले कभी नहीं देखा था। यह तो वह जानता था कि भारत वर्ष में अब तक ऐसे धर्म के अनुयायी पाये जाते हैं जो मनुष्य का माँस खाते हैं। कहीं कहीं अघोरी या अवघड़ अब भी देखे जाते हैं जिनमें यह रस्म अब तक चली आती है। पूर्व में कोई मनुष्य जलती हुई चिता को जब तक वह जल कर राख न हो ले छोड़ कर नहीं जाता। लोगों का विचार है और वह असत्य नहीं है कि अघोरी और अवघड़ मनुष्य के भुने हुये माँस की खोज में रहते हैं। इनके हाथ में कमण्डलु की जगह मनुष्य की खोपड़ी रहती हैं। इसी में सब खाते पीते हैं। घृणा इनमें नाम को भी नहीं होती। यह मल मूत्र को चट कर जाते हैं। मांस खाते हैं मदिरा पीते हैं। उनके यहां किसी वस्तु का निषेध नहीं है। सम्भव है और देश के लोग ऐसे मनुष्यों को घृणा करें परन्तु भारतवर्ष में यह भी मान प्रतिष्ठा और गौरव की दृष्टि से देखे जाते हैं। इनमें से बहुत से सिद्ध पुरुष भी ऐसे होते हैं। यह अपने धर्म का प्रचार कमी के साथ करते हैं परन्तु करते अवश्य हैं। बनारस के पास एक जगह इसका प्रसिद्ध मठ है। उसका नाम 'बाबा कीना राम' का अखाड़ा है। बाबा कीना राम जो किसी समय में जिसे दो ढाई सौ वर्ष से अधिक नहीं हुआ इस पंथ के बहुत बड़े सिद्ध पुरुष हुये हैं। यह पंथ नया नहीं है किन्तु बहुत पुराना है। उसका सिलसिला गुरु दत्तात्रेय

ऋषि से बतलाया जाता है जो अपने समय के अद्वितीय पुरुष थे। यह अवधूत कहलाते थे। इनकी अवधूत गीता कृष्ण गीता की तरह बड़े प्रेम से पढ़ी जाती है।

हमारा नवयुवक इस सम्प्रदाय के नाम से अपरचित नहीं था। इसने अघोरी और अवघड़ देखे भी थे। वह मनुष्य के माँस को खाते हैं। यह भी वह जानता था परन्तु इस अधिकता के साथ नहीं कि गार ठटरियों और खोपड़ियों से भर जावे।

दूसरा मनुष्य होता तो इस दृश्य को देख कर यदि डरता नहीं तो घबड़ा अवश्य जाता। उसे आश्चर्य हुआ। साथ ही कुछ घृणा भी उत्पन्न हुई परन्तु उसने उसी समय उसे दबा लिया। वह डरा तो नहीं परन्तु उसे सोचने समझने के लिये बहुत सी बातें मिल गयी। यह मन ही मन विचार ने लगा "या ईश्वर! यह क्या रहस्य है। मैंने स्वप्न देखा या जागृत अवस्था में यह घटना देखने में आई? यह गार क्या है? यहां इतनी हड्डियां क्यों इकट्ठी की गई? यह लड़की कौन है? किसकी है? और क्यों रहती है?' उसी समय उसके मन ने उत्तर दिया— तुझे क्या? कोई भी हो। तू इसके पीछे क्यों पड़ा हुआ है? संसार विचित्रमय घटनाओं से भरा पड़ा है। मनुष्य को अपने काम से काम रखना चाहिये। कहाँ क्या होता है उसे जानने से लाभ ही क्या है!'

वह अपने मन ही मन के प्रश्नोत्तर से चकित हो गया। वह लड़की भी तो ऐसा कहती है। फिर वह बुरा क्या कहती है!'

मन एक है। भीतर ही भीतर उसके दो टुकड़े कैसे बन जाते हैं। यह एक विचित्र रहस्य है। इसी के अन्दर 'ईश्वर और प्रकृति 'जड़ और चेतन्य, सुरत और शरीर की असलियत का भेद छुपा हुआ है। लोग व्यर्थ ही कहते हैं कि एक वस्तु से

संसार की उत्पत्ति नहीं हो सकती। किसी किसी की दृष्टि से तो यह सच भी कहा जा सकता है। उत्पति के लिये तो दो तत्वों का होना आवश्यक है परन्तु जब यह देखा जाता है कि एक ही वस्तु दो भागों में विभक्त होकर मिलौनी की सृष्टि को उत्पन्न कर देती है तो इससे स्पष्ट रूप से पता लगता है कि एक में दो हो जाने का स्वाभाविक गुण है। इसका साक्षी या गवाह मनुष्य का अपना मन है जो एक होता हुआ दो बनकर प्रश्न और उत्तर करने लगता है और आगे पीछे चलता हुआ संकल्प विकल्प दोनों उठाता है।

मन में प्रश्नोत्तर करता हुआ आप ही आप कह उठा—'मैं इस रहस्य का पता लगाकर तब चैन लूंगा।'

सोचने वालो! सोचो और विचारो। झूठी बात नहीं कही जा रही है। यह अवस्था किसी समय तुम पर भी आई होगी। तुम उलझन में और मन के ताने बाने और गोरख धन्धे में फंस चुके हो और नित्य फँसा करते हो। इसी प्रकार सृष्टि में एक से तीन हो जाते हैं। पहिले पुरुष और प्रकृति प्रकट होते हैं। फिर उनके मेल से आप ही आप अन गिनत जीव बन जाया करते हैं।

वासना उत्पन्न हुई। वासना के साथ क्रिया शक्ति आई। दोनों का मेल हुआ और सृष्टि की उत्पत्ति का सिल सिला चल निकला। यह सृष्टि का नियम है। इसके मानने न मानने का तुम्हें अधिकार है परन्तु यह सच्ची और खरी बातें हैं। पुस्तकों के छल दल में फँस कर प्राण क्यों गंवाते हो। इस रहस्य के खोलने की कुँजी तो तुम्हारे मन में है।

न देखी वह कहीं झांकी, जो देखी मन के मन्दिर में।
शिवाले देखे मन्दिर देखे, तीरथ धाम सब देखे॥

जिसे देखा वह घट में था, यह घट अब घट का कौतुक हैं।
इसी में इष्ट धुर पद, और नामी नाम सब देखे ॥
इसी में ब्रह्म माया है इसी में ज्ञान भक्ती है।
हुये अन्तर मुखी जब आप आठों याम सब देखे ॥

इसने अपने मन में कहा — 'ऐ मेरे मन ! मुझे धोखा न दे और न भ्रम में डाल ! मैं तो बिना पता लगाये न मानूँगा।'

लो जी ! इसी का नाम जीव है। जो अपने आपको अपूर्ण समझ कर और इस भाव को दृढ़ करके अपनी संकल्प शक्ति को पुष्ट और दृढ़ करता है, उसका नाम जीव है और जब तक वह इस उधेड़ बुन में पड़ा रहेगा तब तक वह जीव बना रहेगा। गुत्थी सुलझी और मन की गिरह खुली फिर जीव पना भी गया। वह रह कैसे सकता था और कब तक रह सकता था। फिर न एक है न दो है न तीन है। मन आप ही आप है।

'अब तो जो ठन गई ठन गई ! आगे बढ़ कर पीछे न हटूँगा।'

'न हटो। कहता कौन है कि हटो ! जो करना धरना है कर देखो !'

लड़के को चैन कहाँ ! रात को सोया। लड़की का स्वप्न देखा। उसके मुख से सुना — 'ॐ तत्सत्' और फिर अचेत हो गया। तीनों अवस्थायें झट पट आती गईं —जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति।

दूसरे दिन प्रातःकाल जागा, शौचादि से निवृत हुआ, नहाया धोया, खाया पिया, दिन चढ़ आया। फिर गंगा के किनारे आकर डट गया। इन्हीं अवस्थाओं का नाम जन्मना और मरना है। जीवन और मृत्यु का चक्र संसार में इसी प्रकार चला करता है। सोचने वाले सोचते हैं और जिन्हें इसकी

चिन्ता नहीं है वह इधर ध्यान तक नहीं देते। न वह आते हैं न जाते हैं न आगा पीछा और सोच विचार में पड़ते हैं।

लड़की वहां नहीं थी। वह टकटकी लगाये हुये उसकी राह देखता रहा। सूर्य भगवान अस्ताचल की ओर गये। वह नहीं मिली। यह अपने घर आया। थका थकाया तो था ही, सो गया। लड़की का स्वप्न देखा किया और फिर नींद में चूर हो रहा। दूसरे और तीसरे दिन वही दशा रही। आया और गया। गया और आया। विचित्र गोरख धन्दे में फँसा।

'वह क्या हुई ? क्यों नहीं आई ? क्या अब न आयेगी ?'

'आयेगी और अवश्य आयेगी। न कैसे आयेगी ! उसने आने और अपनी कथा सुनाने का वचन दिया है।'

'और न आई तो क्या कर लोगे !'

'मुझे तो आशा है और पूर्ण आशा है। सब साथ छोड़ देते हैं आशा साथ नहीं छोड़ती और अन्त तक रहती है।'

"इस आशा का कभी अन्त भी होता है ? कभी नहीं। इसका ताना बाना चलता ही रहता है। जब तक जीना तब तक सीना और और आशा का पानी पीना।'

'मेरे हृदय में उसका प्रेम समा गया। क्या मैं रात दिन उसी का चिंतन किया करूँ!'

"यह तो तुम्हारे भाग्य में बँधा है। कोई इससे बचा कैसे सकता है !'

"या ईश्वर ! अब तू ही सहायता कर। तेरे अतिरिक्त और कोई सहायक नहीं है !'

वाह रे वाह क्या कहना है। ईश्वर को भी अपने गोरख धन्धे में घर घसीटा। तीन दिन बीत गये। कैसे बीते ? उसे वही जानता है, दूसरा नहीं जान सकता।

'जाके पांव न फटी बिवाई।
वह क्या जाने पीर पराई॥'

चौथा दिन आया और अपने संग नई उमंगें लाया। वह सौन्दर्य की देवी टीले पर बैठी हुई गंगा की लहरें गिन रही थी। उसकी जान में जान आई। आशा की झलकती हुई मूर्त्ति आंखों के सामने विराजमान हो गई।

## पाँचवां अध्याय

### गार की दूसरी सैर

'तू बड़ी निर्दई है।'

'क्यों?'

'मैं बराबर आता रहा और तेरी राह देखता रहा परन्तु तू न आई।'

'मैं ने तुम से पहिले ही कहा था कि दया मुझे छू तक नहीं गई। मेरा कलेजा पत्थर का है। यह तुम्हारा कहना सच है, परन्तु मैं ने नित्य आने का बचन तो नहीं दिया था। यहां तुम झूठे ठहरे।'

'फिर अब क्या करना है?'

'मुझे तो अब कुछ करना कराना नहीं है। जो करना था कर धर लिया। तुम अपनी कहो।'

'मैं तो उसी धुन में हूँ। मुझे प्रश्नों का उत्तर मिले!'

'देर में या शीघ्र?'

'मेरे लिये तो एक एक क्षण वर्ष के तुल्य हो रहा है।'

'सुनो! उतावला सो बावला। उतावले मनुष्य को बहुत कम सफलता प्राप्त होती है। धैर्य्य और शान्ति की बड़ी आव-

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

श्यकता है।'

'मैं धैर्य्यवान और शान्त होने के अतिरिक्त पुरुषार्थी भी हूँ।'

'इसका प्रमाण क्या है?'

'तेरे पीछे कितने दिनों से पड़ा हूँ। उस दिन गार में गया। क्या यह प्रमाण कम है?'

'गार में गिरना धैर्य्य का प्रमाण नहीं किन्तु पांव की लड़-खड़ाहट का प्रमाण हो सकता है। पीछे पड़ना भी धैर्य्य और शान्ति का चिन्ह नहीं हैं। बात तो तब है जब आगे बढ़े और आगे ही निकल जाये।'

यह हँसा—'तू बातें बनाने में बड़ी चतुर है। बातों में तुझसे कोई नहीं जीत सकेगा।'

वह मुसकराई—'बस हो चुका। हार मान गये। जब तुम बात बनाने वालों से नहीं जीत सकते तो काम करने वालों के आगे क्या ठहर सकते हो?'

'तू विचित्र लड़की है!'

'तुम भी विचित्र लड़के हो।'

'मैं आप विचित्र तो नहीं हूं परन्तु विचित्रता का प्रेमी हूँ!'

यह हँसा और वह मुस्कराई।

'अच्छा! इसकी भी परीक्षा कभी हो जायगी।'

'क्या अभी कुछ कसर रह गयी है?'

'बहुत कुछ।'

'तो फिर मुझे गार की सैर को ले चल और जो जो परीक्षा लेनी हो जल्द ले ले। मैं तेरी बातों में आकर बहकने वाला नहीं हूँ।'

'गार के भीतर मैं तुम्हें परीक्षा के लिये नहीं ले गयी थी। तुमने पूछा 'तू कौन है?' मुझे इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझी कि तुम्हें उस जगह ले चलूँ जहां मैं रहती हूं। तुम मेरे

निवास स्थान को देखते और आप ही पता पा जाते।'

'क्या यह बातों से सम्भव नहीं था।'

'नहीं ?'

'क्यों ?'

'ज्यो केले के पात में, पात पात में पात।
त्यों वक्ता की बात में, बात बात में बात॥'

सुनने से देखना अच्छा है। सुनने से वह बात प्राप्त नहीं होती जो देखने से प्राप्त होती है। तुमने सुना होगा कि आम एक फल है। इससे क्या मिला ? देखा तो कम से कम इसके रंग रूप का तो ज्ञान हो गया। चखना और स्वाद लेना देखने से कहीं बढ़ कर है। मैं सुनाना नहीं चाहती थी, दिखाना चाहती थी। दिखाने का अभिप्राय केवल यह था तुम्हारा ज्ञान साक्षात्कार के साथ हो। सुना सुनाया ज्ञान निकम्मा होता है। वह तोता रटन कहाती है। सुनी सुनायी बात पर केवल सब साधारण विश्वास करते हैं। देखी दिखायी उससे अच्छी। करी कराई सब से अच्छी।'

'तू बड़ी बुद्धिमान मालुम पड़ती है। पंडितों जैसी बात करती है।'

'मैं ने तुमसे पहिले ही कहा था कि मैं पढ़ी लिखी हूँ और वर्तमान बातों की बहुत अच्छी समझ बूझ रखती हूं। तुम समझते होगे कि गहरे गार की गोद में पली हुई लड़की अपढ़ और गँवार होगी। ऐसा समझना तुम्हारी भूल है। तुम भी तो पढ़े लिखे जान पड़ते हो।

'हाँ मैं संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी जानता हूँ। इसी साल मैं ने इलाहाबाद यूनीवरसिटी का बी० ए० पास किया है।

'मैंने पास वास कुछ नहीं किया क्योंकि गार में रही, गार में पली। हैं ! इन भाषाओं को मैं भी जानती हूँ।

'क्या तू अंग्रेजी भी जानती है ?'

'तुम भी विचित्र पुरुष हो। जब मैंने कह दिया कि इन भाषाओं को मैं जानती हूँ तो फिर प्रश्न करने की क्या आवश्यकता थी ! प्रश्न करना तुम्हारा स्वभाव सा जान पड़ता है।

वह लज्जित हो गया।

'चलो ! गार की सैर करो।'

यह प्रसन्न हो गया। वह भी खड़ी हुई।

'तुम इस बोरी को अपने कन्धे पर ले चलो !'

'मुझे तो इसके छूने से घृणा आती है।'

'बहुत अच्छा। तो मैं ही उठा कर ले चलूँगी।'

यह मन ही मन लज्जित हुआ। कुछ सोच विचार कर इसने लड़की के हाथ से बोरी छीन ली। वह पाँच सात सेर से अधिक भारी न रही होगी।

यह सँभलते सँभलाते कुछ दूर तक किनारे किनारे चले। गार के द्वार पर पहुँचे और झुक कर उसके भीतर घुसे। लड़की ने मोमबत्ती जलाई और दोनों धीरे धीरे हड्डियों के ढेर से आगे बढ़े।

राह टेढ़ी और पेच दार थी। यदि मोमबत्ती न जलाई गई होती तो पग पग पर ठोकर खाने और गिरने का भय था। गार की पथरीली दीवारों को चिकना और चौरस बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया गया था परन्तु फिर भी कंकरीली होने के कारण खुरदरी थी। टक्कर खाने से सर फट जाने का भय था। अंधेरे में परिचित मनुष्य के अतिरिक्त और कोई भी इस राह से नहीं निकल सकता था। यह राह थोड़ी नहीं थी किन्तु कई फरलांग लम्बी थी। कहीं यह चौड़ी थी और कहीं बहुत ही तंग थी। पता लगता है कि जहां जहां मिट्टी नर्म थी उसे खोद कर राह चौड़ी बना ली गई थी। उसका दम घुटने लगा। वह इसे पहिले ही जानती थी। उसके कान में झुककर कहा—

'यहां बहुत धीरे से बोलना नहीं तो शब्द गूंजता हुआ गार के सिरे तक पहुँच जायेगा और सुनने वालों को हमारा पता लग जायगा। इस गार को नली के सदृश समझो। पाँव भी रक्खो तो सँभाल कर रक्खो।' यह और भी सावधान हो गया।

ईश्वर ईश्वर करके राह कटी। उसके सिरे पर गुम्बददार महरावी छत लम्बी चौड़ी दिखलाई पड़ी। दीवारें यहां आकर गोल होगईं और यह रामरज या पीली मिट्टी से लिपी हुई थीं। यह जगह शिव भगवान के मन्दिर की तरह थी। इसने अपनी मोमबत्ती बुझा दी। पचासों चिराग और शीशे की हांड़ियाँ जल रही थीं। बीच में एक जलती हुई हांड़ियों का झाड़ लटक रहा था। अनुमान से पता लगता है कि यांह रात दिन जलती रहती होगीं। झाड़ के नीचे शिवजी की मूर्ति जलधरी में रक्खी हुई थी और उसके चारों ओर बड़े बड़े घण्टे लटक रहे थे। जगह बड़ी रमणीक और स्वच्छ थी। गुम्बद के ऊपर दो एक रोशनदान भी थे जिन्हें इसने नहीं देखा। रोशनदानों से चिरागों का धूँआ निकल जाता था। अगर बत्तियां बहुतायत के साथ जल रही थी। उनकी सुगन्ध भीनी भीनी और सुहावनी थी जो मन्दिर में हर जगह फैली हुई थी। मन्दिर भी इस ढंग से बना हुआ था कि उसके चारों ओर सैकड़ों मनुष्य बैठ सकते थे।

इसने उसे गुम्बददार छत की दीवार के नीचे लेजाकर बिठा दिया। वहां सर्व साधारण की दृष्टि नहीं पड़ सकती थी। होटों पर उँगली रखकर इससे बोली—'चुपचाप बैठे रहना। मैं अभी आकर तुमको गार के बाहर पहुँचा दूँगी। आज केवल यहां ही तक लाना था। शान्ति से बैठे रहो। यहां कोई तुमसे पूछ ताछ न करेगा। मुझे अपना विश्वास पात्र रक्षक समझो। चुप रहोगे तो कुछ न होगी। यदि लोगों को तुम्हारा पता लग जायेगा तो मैं उनसे निबट लूँगी। यदि बोले तो बड़ी कठि-

नाइयों का सामना करना पड़ेगा।' यह कहकर वह शिवजी की मूर्ति के पास गई। पृथ्वी पर एक ही बार पांव मारा। सबसे बड़ा घण्टा बज उठा। उसके साथ ही आस पास के घण्टे टन-टन बजने लगे। शब्द गुम्बद के अन्दर गूँज उठा। अनुमान होता है जिस जगह उसने पाँव मारा था, वहां लोहे या तांबे के तारों का सिलसिला था। जो सारे घंटों से मिला हुआ था। इनमें हाथ लगाने की आवश्यकता नहीं थी। पांवों की धमक से तारों का सिलसिला छिड़ जाता था। पाँव हटा लिया गया। थोडी देर में घण्टों का बजना आप ही आप बन्द हो गया।

ऊपर से शब्द सुनाई दिया—'मुण्ड भूषण !'
इसने उत्तर में कहा'—जी महाराज !'
'तू आगई ?'
हाँ ! मैं आ गई ?'
'काम कर आई या बे काम आई ?'
'मैं बेकाम आने वाली कब हूँ !'
'सच है। तू बड़ी सयानी है।'

बस इतनी ही बात चीत हुई। दो तीन मस्त मनुष्य झूमते हुये आये। इनके सिरों पर रुद्राक्ष के दानों का ताज था जो उनकी लम्बी लम्बी जटाओं के सिरे पर गुथा हुआ था। हाथों में रुद्राक्ष के जोशन बँधे हुये, गले में उसीके दानों की माला पड़ी हुई, कमर से केवल एक एक लँगोटी कसी हुई! और सारा शरीर एक दम नंगा था।

यह आये, बोरी को उठा लिया। न प्रश्न न उत्तर ! न बात न चीत ! मानो वह एक दम गूंगे थे। बोरी ली और उलटे पांव लौट गये। लड़की भी उनके पीछे हुई। पंद्रह मिनट तक वह लौटकर नहीं आई !

यह एक दम चकित था। मन्दिर सुनसान! यह अकेला, न कोई आगे न पीछे। चिराग सब वैसे ही जल रहे थे। इसके हृदय में क्या क्या भाव उत्पन्न हुये होंगे कौन कह सकता है! परन्तु था साहसी। चुपचाप बैठा हुआ लड़की की राह देखता रहा।

वह आई, आ गई। वह क्या आई? उसकी जान में जान आ गई। इसने हाथों से संकेत किया और मोमबत्ती जलाई। यह आगे वह पीछे। उसी पेचदा राह से होती हुई उसने इसे गार के मुंह पर पहुँचा दिया।

इसने कहा—'यह विचित्र स्थान है।'

लड़की बोली—'तुमने क्या जाना?'

'तू यहां रहती है और नाम मुण्डभूषणे है।'

'तुमने मेरा नाम और पता जान लिया। तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मिल गया।'

'इतने से काम नहीं चलता।'

'इस समय इतना ही बहुत है। फिर कभी देखा जायेगा।'

इसने कुछ और पूछना चाहा।'

उसने होठों पर उंगली रक्खी।

दोनों चुप हो रहे। वह इसे साथ लिये हुये उसी ऊंचे टीले पर आकर हाथ में भाला लेकर बड़ी सजधज और बांकपन के साथ बैठी। बोरी को पाँव के पास रख लिया।

'अब जाओ। यहाँ न ठहरो।'

'क्यों?'

'इस जगह कोई नहीं आता। यह भयानक स्थान है। मैं तुम्हें केवल पहुँचाने का बहाना बना कर आई हूं नहीं तो दिन में एक बार से अधिक नहीं आती।'

यह समझ गया और नाना प्रकार के विचार करता हुआ

स्थान पर लौट कर आया। इसने वहाँ रुकना या अधिक छेड़ छाड़ करना उचित नहीं समझा।

## छटवां अध्याय

### गार की तीसरी सैर

चाट बुरी होती हैं। किसी को किसी बात की धत न पड़े। चाट को बुरा कौन कहेगा! चाट लगी फिर उचाट होना महा कठिन हो जाता है। इससे ईश्वर बचाये!

सोचा, समझा, बिचार किया परन्तु रहस्य नहीं खुला।

तीन दिन फिर चक्कर लगाता और चकराता रहा। चौथे दिन वह टीले पर उकडू आसन से बैठी हुई दिखाई दी। जिस दिन आती थी उससे पहले ही आती थी। कब आती थी इसे पता नहीं। जब आया इसे पहले ही बैठी हुई पाई।

'तू मुझसे पहिले अती है।'

'यह तो होना ही है। मैं पहिले तुम पीछे। मैं न होती तो गंगा के किनारे तुम से कौन मिलता! तुम किस की राह देखा करते!'

'आज फिर गार की सैर कराओ।'

'कहना सरल और करना कठिन।'

'क्यों?'

'पढ़ना लिखना चातुरी, यह तो बात सरल!
गगन चढ़न मन बस करन, यही बात मुश्किल॥'

'अब तो मैं ने छेड़ छाड़छोड़ दी। जो तू कहती है उसी के करने के लिये तैयार रहता हूं।'

'परन्तु मैंने कब कहा कि तुम कुछ करो धरो या करने पर

तैयार रहो। तुम ने मुझसे प्रश्न किये। मैं ने न मुँह खोला और न तुम्हें मुँह खोलने का अवसर दिया। दया आई। उत्तर देना मैंने स्वीकार कर लिया परन्तु सैन बैन के साथः—

सैंन बैन सों जो लखे, तासो कहिये धाय।
सैन बैन बूझे नहीं, तासो कहे बलाय॥

'तुझे कबीर साहिब की साखियाँ बहुत याद हैं।'

'आदि संत और परम संत कबीर साहिब की बाणी बचपन से ही मुझे प्यारी हैं। मैं अवकाश के समय उन्हें बराबर पढ़ा करती हूं। साखी शब्द का अर्थ भी बहुत कम लोग जानते होंगे।'

साखी आंखी ज्ञान की, समझ लेहु मन मांह
बिन साखी संसार का, झगड़ा छूटे नांह॥

'क्या कहना है! कैसी अच्छी समझ बूझ पाई है। जो बात कहती है निराली और अनौखी! इस समय तो मुझ पर कोई और ही भूत सवार है। गार की सैर को चल, देर न कर!'

'इतनी जल्दी! उतावला पन बुरा होता है। इससे मनुष्य धोखा खा जाता है। अच्छा! चलो, बोरी उठा लो।'

वह पहिले जैसे दो दिन गये थे वैसे आज भी चले।

हड्डियों के ढेर से आगे बढ़कर गुम्बद दार मन्दिर में आये। यह छुप कर बैठा। घन्टे टन टन बजने लगे। दो मनुष्य आये और बोरी उठा ले गये। यह भी गई। पंद्रह मिनट पीछे लौट आई। उसे साथ लिया, छुपे चोरी एक सीधी राह से होकर दोनों निकले। जगह ऊँची थी सीढ़ियों पर चढ़कर जाना पड़ा।

चलते चलते कई मिनट लगे। सीढ़ियों पर कोई भी मनुष्य

दिखाई नहीं दिया। इस समय कोई वहां जाता न होगा। वह उसे जानती थी। इसलिये उसने साहस से काम लिया। तीसरे पहर ऊपर जाने का रिवाज न रहा होगा।

सीढ़ियों को पार करके वह एक मंदिर में पहुंचे जो त्रिकोणाकार बना हुआ था। इसका पता उसे भीतरी दीवारों को देखने से लगा। यह विचित्र ढंग का मंदिर था। ऐसा मंदिर उसने कहीं भी नहीं देखा था। केवल दीवारें त्रिकोणाकार कही जा सकती हैं। उसमें जो सारी वस्तुयें रखी हुई थी त्रिकोणाकार ही थीं। तीनों दीवार लाल रंग से रंगी था। तीन द्वार तीनों दीवारों के बीचों बीच बने हुये थे। इन्हीं से होकर बाहर जाने की राह थी। यह तीनों द्वार भी त्रिकोणाकार थे जो ऐसे ही चौखट बाजुओं में जड़े हुये थे। ऊपर का रोशन दान भी वैसा ही था जिनसे प्रकाश और हवा छन छन कर आती थी। तीनों कोनों पर लाल रंग के त्रिकोणाकार नगारे भी रक्खे हुये थे।

यह मंदिर के रंग ढंग को देख कर कुछ पूछना चाहता था। लड़की ने होठों पर उँगली रक्खी। यह इसकी आज्ञानुसार चुप हो रहा।

जब मंदिर की देख भाल हो चुकी, उसने एक विशेष जगह को पाँव से दबाया। देखते देखते पूर्व की दीवार के ऊँचे सिरे पर लाल रंग का दमकता हुआ सूर्य निकल आया जिस की लाल लाल और आंखों को चकाचौंध करने वाली किरणें सारे मंदिर में बिखर गइं। सारा मंदिर लाल प्रकाश से भर गया। इस लाल सूर्य की किरणों से एक प्रकार का धीमा शब्द 'ॐ' 'ॐ' की विशेष ध्वनि में सुनायी देने लगी। यह शब्द चारों ओर गूंज उठा। कोनों में रक्खे हुये त्रिकोणाकार नगारों से भी वही शब्द आप ही आप धार के रूप में निकलने लगा।

इसके आश्चर्य की सीमा न रही। वह सोचने लगा यह क्या रहस्य है ? कोई बात देर तक समझ में नहीं आई। इसे पता नहीं लगा कि शब्द कहां से आरहा है और किस प्रकार मंदिर के हर कोने से सुनाई दे रहा है।

इसने आँखों को घुमाया। मंदिर के तीनों ओर दृष्टि डाली। लाल दीवारों में पच्चीकारी के बहुत त्रिकोणाकार त्रिभुज बने हुये थे। किसी में मोटे अक्षरों में लिखा था "ॐ तत् सत्"। किसी में 'ॐ शंकराय नमः" किसी में "ॐ शिवाय नमः और किसी में "ओ३म् स्वयम्भुवाय नमः" इत्यादि इत्यादि लिखा था पहिले यह मंत्र स्पष्ट रीति से दिखाई नहीं देते थे। अब भभकती हुई आग की तरह यह अक्षर चमक रहे थे। एक जगह सुन्दर अक्षरों में लिखा हुआ था—'ओ३म् पद्मे ऽहम्'। इसी मंत्र के साथ 'ओ३म् अमीतेभ्यः' और 'ओ३म् त्रिरत्नः' भी लिखे हुये थे। पहिले तीन मंत्र तो हिन्दुओं के यहां बच्चा बच्चा जानता है और अन्तिम तीन मंत्र हिन्दुओं में नहीं किन्तु बौद्धों में सुने जाते हैं। यह पढ़ा लिखा नवयुवक था। इलाहाबाद यूनीवरसिंटी का ग्रैजुऐट था। सोच विचार कर यह इस परिणाम पर पहुंचा कि यह जगह नई नहीं है किन्तु पुरानी है और बौद्धों के समय की है। यह बिचार बिजली के कौंधे की तरह उसके हृदय में आया और निकल गया। अधिक सोचने का समय कहां रहा था !

ओ३म् शब्द बड़ा ही मधुर, सुरीला आनन्द दायक था। यदि चुपके से अन्य जगह में प्रवेश करने का भय उसके हृदय में न होता तो यह उसे सुनता हुआ मस्त और बेसुध हो जाता।

शब्द की थर थराने वाली ध्वनि केवल थोड़ी देर तक गूँजती रही। फिर एक दम बंद होगई। वह लाल रंग का चमकता हुआ सूर्य देखते देखते आँखों से ओझल हो गया।

नीचे से शब्द सुनाई दिया–"मुण्डभूषणे ! यह तूने क्या किया ? काल भगवान का चक्र नियमानुसार चलता रहता है। उसमें परिवर्तन कैसा !"

'मैं ढिटाई के लिये क्षमा चाहती हूँ।"

हंसने का शब्द सुनाई दिया–"तू लड़की है और फिर लड़की भी राजपूत है। अभी तक बचपन का चंचल पना नहीं गया। अच्छा ! मंदिर से जल्द बाहर आजा। सायं काल के भजन का प्रबन्ध तुझ को करना होगा।"

इतना कहकर बोलने वाला बंद हो गया।

लड़के ने सोचा–"यह शब्द भी वही है जो मैं पहिले सुन चुका हूं। शब्द करने वाला कहां और किस जगह छिपा हुआ बैठा है। राह में तो ऐसा कमरा भी नहीं दिखलाई देता जिसमें किसी के रहने की सम्भावना हो और यह शब्द जैसा नीचे सुनाई दिया था वैसा ही ऊँचे भी सुनाई दिया।"

सोच समझ कर उसे इस परिणाम पर पहुंचना पड़ा कि ऊंचे और नीचे मंदिरों के बीच में कोई जगह ऐसी अवश्य है जहां पर बोलने वाला बैठा रहता है और परदा में रहकर दोनों ओर की देख भाल करता रहता है।

यह दृश्य विचित्र था और पहिले दिन से कहीं आश्चर्य जनक और आनन्द दायक था। शोक की बात यह थी कि वहां कोई किसी बात का बतलाने वाला न था। लड़की ने तो अपने होठों पर मुहर लगा रखी थी। इसके अतिरिक्त वह स्वाभाविक बड़ी गंभीर थी।

लड़की ने उंगली उठाई। दोनों एक दम खड़ी सीढ़ियों से उतरे। बिचला मंदिर राह में पड़ा। उस से निकल कर आगे बढ़े। यहां भी नीचे की सीढ़ियां खड़ी हुई बनी थीं और चक्कर खाकर ऊपर को गयी थीं। सम्भव है इसका प्रबन्ध जगह की

कमी के कारण किया गया हो और यह भी सम्भव है कि वह किसी और विचार से रहा हो। कोई बात समझ में नहीं आई और न वहाँ सोची जा सकती थी।

इन सीढ़ियों ने गार में पहुँचा दिया। फिर राह आड़ी टेढ़ी नीची ऊंची और पेचदार मिली। हड्डियों और खोपड़ियों के ढेर से होते हुये गार के मुँह पर आये और दोनों के दोनों टीले के पास पहुंचे। अभी दिन बहुत था। वह तो वहां हाथ में त्रिशूल लेकर पांव नीचे करके बैठ गई और वह खड़ा रहा।

लड़की ने पूछा —"आज तुम्हारे प्रश्न का उत्तर कुछ और भी मिला या नहीं?"

लड़के ने कहा—"हाँ! पहिले दिन यह पता लगा था कि तुम्हारा नाम मुण्डभूषणी है। आज इतना और खुला कि तुम राजपूत वंश की हो।"

"तो अब जाओ। प्रश्न का उत्तर मिल गया।"

"यह कुछ नहीं है। इससे काम नहीं चल सकता।"

"फिर क्या किया जाये।"

'यह पता लग जाय कि तुम्हारा बाप कौन है? क्या करता है? कहां का रहने वाला है? तब काम चले!"

'क्यों?"

'क्योंकि मैं भी राजपूत हूं! जाति का प्रेम प्रत्येक मनुष्य को होता है।"

"इसका पता पाना कुछ कठिन नहीं था। ओंकार के मंदिर में उसका सामान था। तुमने पहिले यह सब बातें नहीं पूछी थी नहीं तो आज भी उनका उत्तर मिल जाता। अच्छा! अब तो अवसर हाथ से जाता रहा।"

"क्या फिर अवसर न मिलेगा?"

'क्यों नहीं ! तुम किसी दिन आना। मैं ओंकार के मंदिर से ऊंचे ले चलूंगी। वहां तुम्हें इन प्रश्नों का उत्तर मिलेगा।'

'किस दिन आऊं ?'

'इसका उत्तर मेरे पास नहीं है और न मैं दिन और समय नियत कर सकती हूँ। यह मेरे स्वभाव और सिद्धांत के विरुद्ध है।'

'अच्छा ! मैं फिर आऊंगा।'

'तुम आने जाने से उकता गये होगे ?'

'और तू ?'

'मैं नहीं जानती। मुझे तो कहीं से न आना है न कहीं जाना है। कुये की मिट्टी कुये में। पानी की मेढ़की पानी में ! मैं क्यों उकताने लगी !'

'पानी की मेढ़की पृथ्वी पर भी तो फुदकती रहती है।'

'हां ! इस प्रकार तो मैं भी आतीं जाती हूँ परन्तु अब तुम न आओ।'

क्यों ?'

'फिर प्रश्न ! तुम्हारा तो प्रश्न करने का स्वभाव पड़ गया है। जो लोग रात दिन प्रश्न में लगे रहते हैं वह खाली हाथ आते हैं और खाली हाथ जाते हैं। प्रश्न का कोई अभिप्राय भी तो हो ?'

'है क्यों नहीं !'

'तब मुझे आक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है।'

'तू यदि चाहे तो मुझसे प्रश्न कर सकती है। मैं तुझे अपने आने जाने का कारण बता सकता हूं।'

मैं प्रश्न नहीं करती, न यह मेरा स्वभाव है, न मैं उसे कभी पसंद करती हूं।'

'तू विचित्र लड़की है। मनुष्य संसार में प्रश्न करते आता

है और प्रश्न करते जाता हैं। प्रश्न करना तो मनुष्य का स्वाभाविक गुण है।'

किस का ? जो अपनी कमी को अनुभव करते हैं, अज्ञानी हैं, जानते बूझते नहीं, वह प्रश्न करते हैं।'

'तू ज्ञानी है। तुझमें कमी नहीं है। भरी पूरी है। मैं ऐसा नहीं हूं। मैं अपनी कमी को आप मानता हूं।'

मुझे छोड़ो। अपनी बात करो। तुम आप कह चुके हो कि तुम्हारा कुछ अभिप्राय भी है। इसलिये कोई लक्ष्य या आदर्श अवश्य ही होगा। यह मैं जानती हूं।'

'मेरा आदर्श तू है। अब मैं क्यों अपने भेद को छुपाऊँ ! जब से तुझे देखा है चित्त यही चाहता है कि तू मेरे पास और मेरे साथ रहे।मैं राजपूत हूं और तू भी राजपूतनी है। यहाँ तक तो मेल मिल गया।'

वह मुस्कराई— और जो आगे मेल न मिले।'

'इसकी मुझे चिन्ता नहीं। मैं पढ़ा लिखा और समझ बूझ वाला मनुष्य हूं। साथ ही स्वतंत्र भी हूं। खाने पीने के लिये ईश्वर ने बहुत कुछ दिया है। इतना मेल मिल गया और यह बहुत है।'

,जब तुमने अभी आदर्श को प्राप्त नहीं किया है फिर अचिन्त कैसे कहा जाये। यदि तुम स्वतन्त्र होते तो बन्धन को क्यों पसन्द करते ! आदर्श की प्राप्ति के लिये यत्न करते रहना कमी को बतलाता है। इसलिये तुम्हारा कहना ठीक नहीं है। मैं तुमको चिन्तित, अज्ञानी और परतन्त्र पाती हूं। यदि आदर्श न होता तो मैं तुम्हारी बातों में आ जाती। तुम सुखी और प्रसन्न चित्त नहीं हो। हाँ ! मुझको अपना साथी बनाकर सुखी और प्रसन्न चित्त होना चाहते हो। तुम कंगाल

हो। मुझे धन समझकर मेरे मेल से धनवान बनना चाहते हो। तुम में समझ बूझ नहीं है। समझ बूझ होती तो स्वतन्त्र होते और अपने आप में कमी न पाते।'

'तू सचमुच ज्ञानी है।'

'मैं ऐसा नहीं कहती।'

'तो मुझे अपने मेल से पूर्ण सुखी और प्रसन्न चित्त होने देगी या नहीं? मैं मानता हूँ कि वास्तव में मुझ में कमी है। मैं अब तक भूल पर था।'

वह हँसी—'तुम सच्चे हो। जो अपनी भूल को मानकर हट न करे वह सच्चा मनुष्य है और यदि नहीं है तो हो जायेगा। तुम्हारी यह एक बात मुझे पसंद आई।'

'मालिक का धन्यवाद है। फिर तो मुझे आशा रखनी ही चाहिये कि मेरा मनोरथ जल्दी ही सिद्ध होगा।'

'कैसे?'

'तू मुझे पसंद करेगी और मेरी होकर रहेगी।'

'पसंद की बात तो मैंने बिना सोच विचार के कह दी। मैं सच्चाई को पसंद करती हूँ। सच्चे मनुष्य मुझे पसन्द हैं। उनके मेल और साथ को अच्छा समझती हूं परन्तु तुम्हारी होकर रहने से तुम्हारा अभिप्राय कुछ और होगा?

'मैं तुमको अपनी स्त्री बनाना चाहता हूं।'

वह मुस्कराई—'कैसे स्त्री बनाओगे?'

'विवाह करूँगा।'

'बात तो बड़ी अच्छी है। तुम तीन चार बार मुझसे मिले हो। इससे अधिक जान पहचान नहीं है। तुम्हारे इस निर्ण में शीघ्रता का दोष प्रगट होता है।'

'मैं ने उतावले पन से काम नहीं लिया। दो सप्ताह से अधि हुये इस पर विचार करता रहा। अन्त में मैंने इस विचार क

दृढ़ और निश्चय कर लिया।'

'तो बनाओ। मुझे कोई रोक टोक नहीं है परन्तु मैं इस विषय में स्वतन्त्र नहीं हूं। जिन्होंने मेरा पालन पोषण किया है इसका निर्णय केवल वही कर सकते हैं। यहां मैं पराधीन हूं।'

'पालन पोषण करने वाले कौन और कहाँ हैं ?'

'फिर प्रश्न ! जिन्होंने मुण्डभूषणे कह कर पुकारा था वही इस समय मेरे रक्षक और पिता हैं।'

'उनसे मुझे मिलादे।'

'यह काम तुम्हारा है मेरा नहीं। जिसका कोई आदर्श है वह आप उसकी प्राप्ति का यत्न करता है।'

'तो मुझे एक बार फिर मंदिर के अन्दर ले चल सकेगी ?'

'क्यों नहीं ! इतना मैं कर दूँगी। जब तुम दूसरी वार मिलोगे मैं ले चलकर उनके सामने खड़ा कर दूँगी। बस ! उतना ही मेरा काम होगा। आगे वह जाने और तुम जानो।'

'बस ! इतनी ही आवश्यकता है। मैं सब कुछ कर लूंगा।'

'अच्छा तो जाओ। देर हो गई है।'

इस बार दोनों ने एक दूसरे को प्रेम की दृष्टि से देखा और नई नई उमंगों के साथ अपने अपने स्थान को गये।

---

# सातवां अध्याय

## निराशा

जेठ का महीना था जब यह दोनों मिले थे। दोनों की उठती हुई जवानी थी। यह २० वर्ष के लगभग रहा होगा !

मोंछें भी पूर्ण रीति से नहीं निकली थीं। लड़की की अवस्था सोलह वर्ष से अधिक नहीं थी। दोनों के उभार के दिन थे।

यह पढ़ा लिखा, समझदार और होनहार था। वह बुद्धि विवेक की दृष्टि से कहीं बढ़ी हुई थी। दोनों ही में प्रेम की आकर्षण शक्ति थी। भेद केवल इतना था कि इसमें धैर्य्य और शान्ति की कमी थी। वह अपने मन पर पूरा पूरा अधिकार रखती थी। यह धोके में आसकता था। लड़की को धोका देना महा कठिन काम था। कहते हैं पुरुष की अपेक्षा स्त्री में उतावलापन अधिक होता है। वह पुरुष का रूप देख कर स्वाभाविक आकर्षण शक्ति की गर्मी पाकर मोम की तरह पिघल जाती है। सम्भव है यह सच हो और सम्भव है यह झूट हो। यहां इसके विरुद्ध दशा थी। वह यदि चुम्बक पत्थर थी तो यह लोहा था। उसके सौंदर्य और लावण्यको देखकर उस की ओर खिंचा। शारीरिक सम्बन्ध से वह नहीं मिले थे। एक ने दूसरे के शरीर को हाथ नहीं लगाया। केवल सभ्यता ने ही रुकावट नहीं डाल रक्खी थी किन्तु वह अपने धर्म की पक्की थी। इसे साहस नहीं हो सकता था। दोनों ही सभ्यता के रूप थे। ऐसी छेड़ छाड़ वहाँ होती है, जहां सच्चे प्रेम की जगह मन से अपवित्रता के साथ साथ नीच भाव रहता है। यह छिछोरोंकी बातें हैं।

बात चीत हुई। दोनों ने अपने मन के परदों को खोल दिया। उधर नयी रोशनी थी इधर बचपन की सादगी थी। उस पर विद्या का निखार था। इसे मंदिर के निवास ने पवित्र बना रक्खा था और सभ्यता ने सोने पर सुहागे का काम कर दिया था। वह इसका लोहा मान गया। बुद्धि विवेक और योग्यता की दृष्टि से उसने लड़की को अपने से कहीं बढ़कर पाया।

एक दूसरे की आंखों में खुभ गया। लड़की के हृदय में उसका साहस, उत्साह और बांकपन घर कर गया। पुरुषों में निर्भयता और वीरता ऐसी वस्तु है जिन पर राजपूतनियां अपना प्राण निछावर कर देती हैं।

दोनों बिदा होकर अपने ठौर ठिकाने गये। इनके हृदय के भावों को लेख बद्ध नहीं किया जा सकता। इसका सम्बन्ध केवल सोचने समझने ही से है।

वह तो गई। कई दिनों तक बाहर नहीं दिखाई दी। यह नित्य गंगा के किनारे चक्कर लगाया करता था। घन्टों उसकी राह देखता और फिर निराश होकर घर लौट जाता था।

जेठ के महीने में जब पहाड़ पर बर्फ पिघलती है गंगा का पानी बढ़ने लगता है। इस मास में पहाड़ों पर वर्षा भी हो जाया करती है और यदि उचित समय पर मानसून आ गया तो मैदान में पानी बरसने लगता है। साधारण रीति से वर्षा आधे असाढ़ से होती है।

एक दिन काले काले बादल उमड़ आये। आँधी चली, मूसलाधार पानी बरसा, आकाश मण्डल की खिड़कियाँ खुल गईं और चन्द्रलोक या पितृलोक के जीवों को जिन्हें कर्मों का फल भोग मिल चुका था बादल ऊपर से उड़ा लाये और पानी की धार के सिलसिले में फिर पृथ्वी पर ढकेल दिया। गंगा पानी से भर गयी। करारे पानी से कट कट कर नीचे गिरते गये। वृक्षों की जड़ खोखली हुई। वह भी गंगा की गोद आ रहे और बह निकले।

सावन भादों की बाढ़ भी इस जल वृष्टि को देखकर लज्जित हो जाती। तालाब व गढ़े भर गये। नदी नाले बह निकले। कोसों तक पानी ही पानी दिखलाई देता था। यह दशा कई दिनों तक रही।

लड़का जाता तो कहाँ जाता ! आता तो कहाँ आता ! पानी आया टीले को बहा ले गया। गार के मुँह का कहीं पता तक नहीं कि वह था भी या नहीं ! काल भगवान की सृष्टि में परिवर्तन का नियम बराबर इसी प्रकार काम करता रहता है।

जब पानी रुका तब यह गार पर बैठ कर गार की खोज में निकला। जब उसका मुँह दिखलाई देता तो उसका पता भी लगे। उसके ऊपर तो बल्लियों पानी आगया था। कोई उसे ढूंढे भी तो कैसे ढूंढे और कहाँ ढूंढे ! बी० ए० का डिप्लोमा लेकर वह भी घूमने फिरने के लिये इधर आ निकला था। मां बाप और सम्बन्धी इत्यादि तो तीर्थयात्रा के निमित्त आये थे। यह सैर के लिये आ गया था। घर इलाहाबाद शहर में था और आया था कहाँ ! इसको भी पढ़ने वाले जानना चाहते होंगे।

सुनो:—गंगा के बहाव में इलाहाबाद से चल कर एक जगह ऐसी आती है जहाँ गंगा पूर्व की ओर जाते जाते एकदम अपना बहाव पश्चिम की ओर बदल देती है। यहां उसका नाम 'पश्चिम वाहिनी' हो जाता है और कुछ दूर जाकर फिर कुछ टेढ़ी हो कर और बीच में जगह छोड़ कर पूर्व की ओर वह निकलती है। कहते हैं कि प्राचीन समय में यहाँ गंगा के बहाव ने हिन्दी अक्षर में लिखे हुये 'ॐ' का रूप धारण कर रक्खा था।

हिन्दू सनातन से 'ॐ' की मुख्यता को मानते आये हैं। उन्होंने गंगा की इस जगह को ओंकार मान लिया और इसे पवित्र तीर्थ स्थान समझने लगे। अब इसका रूप बदल गया है परन्तु पश्चिम की ओर अब भी उसकी धार बहती है। यह जगह गंगा के दक्षिण इलाहाबाद जिला के मेजा तहसील के सामने है और गंगा के उत्तर का इलाका महाराजा बनारस के

राज्य में है। इसके पास कई गाँव की बस्ती है जैसे इँटहरा, धन तुलसी, छछुआ और कोंदरिया इत्यादि इत्यादि।

हमारी कहानी के लड़के के मां बाप ने यहां आकर स्नान करने की मनौती मानी थी और यह भी उनके साथ आ गया था। यह इँटहरा में ठहर गये थे जो वहाँ बड़ा गांव है।

यह गार या कंदरा भी इसी जगह पर है, जहाँ लड़की से उसकी जान पहचान हो गयी। यह भी कुछ संयोग था। नाव पर चढ़कर गंगा की सैर के लिये आया. रेत पर उतर पड़ा। अकेला था। चलते फिरते टीले के पास पहुँचा, वहां लड़की दिखलाई दी। इसके प्राकृतिक सौन्दर्य ने इसके लिये जादू का काम किया। आगे जो कुछ हुआ उसे हमारे पाठकगण पढ़ चुके हैं।

बाढ़ कई दिनों पीछे कम हो गयी परन्तु गंगा के किनारे की जगह एक दम बदल गयी थी। वह कुछ की कुछ हो गई थी। आशा की जगह निराशा ने ले ली। सोचा कि यदि गार की यह राह बन्द हो गई तो दूसरी अवश्य होगी और वह सूखी जगह से अवश्य मिली होगी, क्योंकि उसे यह विश्वास था कि त्रिकोणाकार मन्दिर के ऊपर अभी कम से कम एक और मंजिल होगी क्योंकि यह भी पृथ्वी के अंदर खुदा हुआ था और उसकी समझ में सबसे ऊपर का हिस्सा चौरस पृथ्वी से अवश्य मिला होगा।

मन में इच्छा उत्पन्न हुई कि दूसरी ओर से राह का पता लगायें परन्तु उसके माता पिता घर लौटने के लिये उत्सक हो रहे थे। इस कुसमय के पानी से तंग आगये थे. इस लिये अधिक न ठहर सके। यह बेचारा करता भी तो क्या करता। माता पिता के साथ इसे भी निराश होकर घर लौट आना पड़ा।

नाविल

# द्वितीय भाग

## पहिला अध्याय

### विश्वास पात्र मित्र

लाला रामचन्द्र खत्री की कोठी के सामने मोटर खड़ी हुई थी। दो भले मनुष्य आमने सामने की ओर से आये। एक कोतवाली की ओर से आया जो चौक के पश्चिम है। दूसरा अतरसुइया मुहल्ले से निकला। दोनों साथ जाने वाले थे। दोनों ही अंग्रेजी सभ्यता के सांचे में ढले हुये और और मोंछ मुंडे हुये थे। मोटर उनकी राह देख रही थी।

वह आये और मोटर के सामने खड़े हो गये—

'कहो! किधर चलना है?'

'बहादुर गंज होते राम बाग को चलना है। स्टेशन पर सुदर्शन सिंह मिलेगा, इसी ट्रेन से वह आने वाला है।'

'अजी! उसका क्या पता। वह तो जब से लक्ष्मण सिंह के साथ रहने लगा एक दम उसी का होगया और निरा काठ का उल्लू बन गया। जो वह कहता है वही करता है। आप देखता भालता तक नहीं। इलाके का सारा काम भी उसी पर

छोड़ रक्खा है। जार्ज टाउन में नई कोठी बन रही है। उसमें भी लक्ष्मण सिंह का हाथ है। बी० ए० पास किया। डिपलोमा पाने के पश्चात लक्ष्मण सिंह के कहने पर इँटहरा की सैर को गया। दो सप्ताह हो गये। कुशल पत्र तक नहीं भेजा। वह तो उसके हाथ में कठपुतली बन कर नाचता है'

'हमें क्या करना है! जो जैसा करेगा वैसा भरेगा। आज पता लगा वह इसी गाड़ी से आने वाला है, इसलिये पहिले इलाहाबाद सिटी स्टेशन पर उसे देखना है। फिर दारा गंज की ओर चलेंगे।'

'सुनो भवानी सिंह! सुदर्शन सिंह बड़ी आपत्ति में फँसेगा। लक्ष्मण उसे नष्ट भ्रष्ट करके कहीं का नहीं रक्खेगा। मुझे अब उसका साथ पसन्द नहीं है। बदनामी होगी।'

'देखा जायेगा। तुम्हारा नाम सुजान सिंह माँ बाप ने बहुत सोच समझ कर रक्खा था। तुम चतुर और बुद्धिमान हो। यह दोनों हमारे मित्र हैं। मित्र की मित्रता से काम! मित्र के कामों से क्या काम!'

भवानी सिंह और सुजान सिंह दोनों कार पर बैठे। वह चिलपों करती और धूल उड़ाती हुई चल निकली। कोतवाली चौक; बहादुर गंज और कीट गंज होते हुये राम बाग के स्टेशन पर पहुंची। दोनों उतरे और प्लेटफार्म पर गये। गाड़ी का सिगनल हो चुका था। वह आने को ही थी। दो मिनट पीछे भकभक करती हुई आ पहुंची। सुदर्शन सिंह सेकिण्ड क्लास से उतरा। यह उससे मिले।

'अच्छी सैर की! पन्द्रह दिन वहीं लगा दिये।'

'बात ही कुछ ऐसी थी जिसने आज तक रोक रक्खा।'

'फिर सुनेंगे। इस समय केवल तुमसे मिलने आये थे।

तुम्हारे माँ बाप साथ हैं नहीं तो सीधे दारागंज ले चलते।'

'फिर कभी सही।'

बस इतनी ही बात चीत हुई। भवानी और सुजान ने अस बाब उतरवाने में सहायता दी, उन्हें प्लेट फार्म से बाहर मोटर पर बिठाकर शहर की ओर बिदा किया। आप दोनों ने दारा-गँज की राह ली।

भवानी सिंह—'सुदर्शन सिंह इँटहरा क्यों गया था ?'

सुजान सिंह—'उसका बाप पुराने ढंग का सनातनी हिन्दू है उसने मनौती मनानी थी कि यदि सुदर्शन बी० ए० पास हो गया तो यह पश्चिम वाहिनी गंगा की धारा में जाकर स्नान करेंगे। वह पास होगया। यह उसी अभिप्राय से सुदर्शन सिंह को अपने साथ ले गये थे। मैंने मुहल्ले वालों से ऐसा ही सुना था।'

भवानी सिंह—'सुदर्शन का बाप पुराना सनानतनी अव-श्य है परन्तु वर्त्तमान समय की स्वतन्त्रता की समझ बूझ रखता है। देखो ना ! लड़के को घर में नहीं रखता। उसके रहने का प्रबन्ध अलग बंगले में कर रखा है। वहां ही वह पढ़ता है। यदि कट्टर होता तो ऐसा न करता।'

सुजान—'वह मूर्ख है। बेटे की राह में काँटे बो रहा है। यह स्वतन्त्रता अन्त में दुख का कारण बनेगी। यह क्या कि अभी २० वर्ष की भी अवस्था नहीं हुई और उसे अपने से अलग कर रक्खा है ! सुदर्शन स्वभाव का बहुत अच्छा है परन्तु अभी संसार के नर्म गर्म को नहीं जानता।'

भवानी—'मैं भी ऐसा ही समझता हूं।'

सुजान—'और यह लक्ष्मण उसकी आस्तीन का सांप है। कौन जाने यह कैसा मनुष्य है ! मैं इससे बहुत खटकता हूँ।'

भवानी—'सुदर्शन कहीं उसके भर्रे में आकर तो इंटहरा नहीं गया था क्योंकि वह भी इंटहरा का रहने वाला है। वहाँ राजपूतों के ८० घर हैं। बहुत बड़ी आबादी है परन्तु है गांव! वहां शहरों की तरह दिल बहलाव का सामान कहां!'

सुजान—'मैं कुछ नहीं कह सकता। इस आने जाने में उसकी सम्मति न रही होगी। अनुमान से कुछ ऐसा ही पता लगता है।'

भवानी—'क्यों?'

सुजान—'अभी दो चार ही महीने हुये कि लक्ष्मण इलाहाबाद आया है। उसके मिलने जुलने वाले सन्देह करने लग गये हैं। कुशल यह है कि वह एक अंग्रेजी कम्पनी का एजेन्ट है, नहीं तो कोई कौड़ी को भी नहीं पूछता। अपनी जन्म भूमि में अपनी बुराई भलाई छोटे छोटे बच्चें तक जानते हैं। लक्ष्मण जानता होगा कि सुदर्शन को वहां उसका कच्चा चिट्ठा सुनने में आयेगा। इसलिये उसने कभी इँटहरा जाने की सम्मति न दी होगी।'

भवानी—'सच कहते हो नहीं तो वह आप साथ गया होता।'

सुजान—'सुदर्शन उसे साथ ले जाना चाहता था परन्तु वह कोठी की देखभाल और दफ्तर के काम काज का बहाना कर गया। मैं इन बातों को सुन चुका हूं।'

भवानी—'फिर उस पर लक्ष्मण का जादू कैसे चल गया।'

सुजान—'किसी काम में उसने सुदर्शन की सहायता की थी। इसने उसी उपकार के कारण उसे अपना शुभ चिन्तक समझ लिया। बस! इतनीसी बात है।'

भवानी—'वह अन्धा है। उल्टी समझ रखता है।

कोई लाख लक्ष्मण की निन्दा करे वह उसे कान तक नहीं देता।'

सुजान—'ऐसा ही है। उसने अपना सारा हिसाब किताब सब उसके हाथों में दे रक्खा है। वह मन मानी धांधली मचाता रहता है। यह देखता तक नहीं और कहता रहता है कि लक्ष्मण उसे कभी धोका नहीं दे सकता। संसार में वही उसका शुभ चिन्तक है।'

भवानी—'बच्चा को कुछ दिनों पीछे पता लगेगा। अभी तक तो वह भर्रे में है।'

सुजान—'हम को भी उस समय महा दुख होगा क्योंकि सुदर्शन वास्तव में देवता है।'

भवानी—'परन्तु देवता का साथी राक्षस भी तो है। इसलिये मेरी समझ में इन दोनों ही से अलग रहने में भलाई है।'

सुजान—'बचपन का साथ! एक साथ पढ़ने वाले! दिन रात का एक जगह उठना बैठना! इतने दिनों का सम्बन्ध झट-पट नहीं टूट सकता। अभी तो तुम कह रहे थे कि मित्र की मित्रता से काम है और अभी दम के दम बदल गये।'

भवानी—'जब तुमने सावधान रहने की बात कही है मैं चौकन्ना हो गया हूं। क्या कहूं! सुदर्शन मानता नहीं! वह उस दुष्ट के पाले पड़ा हुआ है। समझाने पर नहीं समझता। किया जाये तो क्या किया जाये!'

सुजान—'अलग थलग हो जाना तो सहज और सुगम है परन्तु वह मित्र है। उसे आपत्ति में छोड़ना अच्छा नहीं है। चाहता तो मैं भी यही था कि उसे स्पष्ट शब्दों में जताकर अलग हो जाऊँ परन्तु आपत्ति के समय सहायता न देना और अलग थलग हो जाना अच्छी बात नहीं है। लोग क्या कहेंगे!'

भवानी—'फिर क्या किया जाये?'

सुजान—'यह बात मेरी समझ में भी नहीं आती। चलो दो। कुछ दिनों पीछे वह आप राह पर आ जायेगा।'

भवानी—'तुम्हारा कहना ठीक है परन्तु जब हानि पहुँच जावेगी तब राह पर आना और न आना बराबर है।'

मोटर दारा गंज आ पहुँची। यह एक और मित्र के घर गये। उससे मिले और कुशल पूछी। उसका नाम रूपसिंह था। पान खाने और हुक्का पीने के पश्चात रूपसिंह ने पूछा—'कुछ सुदर्शन का भी पता है?'

'आज वह तीर्थ यात्रा से लौट आया है। हम अभी स्टेशन पर उससे मिल कर आये हैं।'

'और उसकी नाक का बाल लक्ष्मण क्या कर रहा है?'

'वह यहां है। वह स्वभाव का बड़ा ही गम्भीर है। कौन कह सकता है किस धुन में है।'

'मैं कहे देता हूँ वह धमा चौकड़ी वाला मनुष्य है। उसकी बातों का कोई विश्वास नहीं है। तुम सब के सब ज्वालामुखी पहाड़ की चोटी पर बैठे हुये हो या यों कहो कि बारूद भरी हुई सुरंग के ऊपर खड़े हो। पहाड़ के फटने या बारूद में आग लगने की देर है फिर ऐसे उड़ोगे कि पता तक न चलेगा।'

'यह भविष्यवाणी सुदर्शन के लिये है या हमारे लिये भी?'

'तुम बचकर कहां जा सकते हो? हम तुम सभी आपत्ति में है। संग दोष का फल सबको भुगतना पड़ता है। तुम ने नहीं सुना है कि गेहूं के साथ घुन भी पिस जाता है। यह दुष्ट हम लोगों में कैसे आ घुसा। क्या हम चारों कम थे।'

'दुष्ट संग जनि देहु विधाता।
रोरव नरक होय बरु बासा॥'

'इसमें सुदर्शनसिंह का दोष है।'

'वह है अभी कै दिन का ! अभी तो दूध के दांत भी न टूटे होंगे। हम लोग फिर भी उससे बड़े और सयाने हैं। इसमें हम लोगों का भी दोष है।'

'तुम भी तो बहुत डरा रहे हो। क्या कोई उड़ती हुई बात सुनी है ?'

'कुछ सुनता तो रोक थाम की सूझती परन्तु कोई न कोई बात तह में अवश्य है। इलाहाबाद में इसकी चर्चा है। बड़े छोटे सब ही मुँह मिलाकर और मुँह से कान लगाकर कहते हैं। मैंने बहुत सर मारा कि कुछ तो पता चले परन्तु नहीं चला।'

'सम्भव है यह सब भ्रम ही भ्रम हो।'

'फिर भी कुछ तो अवश्य है।'

'भाई। हमारा कोई दोष नहीं है। जो कुछ हो रहा है उसका मुख्य कारण सुदर्शन है। वह नहीं मानता और न किसी की सुनता है।'

'फिर वही बात कही। वह अल्लहड़ और कलका लड़का है। संयोग वश यदि कोई बात हो गई उसे कौन क्या कहेगा ! सोचो तो सही।'

'फिर क्या करें ?'

'पता लगाओ कि हवा में क्या है ? मैं कई दिन से इसी सोच में हूं।'

'तुम्हें किस बात का सोच है ?'

'लक्ष्मण को केवल दो सौ रुपये मासिक कम्पनी से मिलते हैं। वह राजाओं के ठाट बाट से रहता है। दो सौ रुपये मासिक पाने वाला इस प्रकार कैसे रह सकता है ? इतना बड़ा खर्च उसका कहाँ से चलता है ?'

'सुदर्शनसिंह का हिसाब किताब उसके हाथ में रहता है।'

उससे काम नहीं चल सकता। सुदर्शन का बाप लखपती सही! उसने लड़के के हिस्से की जायदाद अलग करदी। उसे बड़े अमीरों की तरह रहने और हाकिमों से मिलने की आज्ञा दी क्योंकि वह उसे बड़ी ही प्रतिष्ठित अवस्था में देखना चाहता है। ऐसी रहन सहन में बड़ा रुपया खर्च होता है। और फिर लक्ष्मण ऐसा बुद्धू नहीं है जो इसी पर हाथ फेरता इससे उसका भाँड़ा शीघ्र ही फूट जाता। हम सब अन्धे हैं! देखते हैं और सुझाई नहीं देता।'

'तुम्हारा विचार ठीक है। फिर क्या किया जाये?'

'भीतर ही भीतर खोज में लगो कि यह रुपये की कान उसे कहां से मिल गई है। कौन सी सोने का अंडा देने वाली मुर्गी हाथ लग गई है जिसने उसे थोड़े ही दिनों में माला माल कर दिया।'

ऐसी बातें देर तक होती रहीं। तीनों ही सोच विचार में पड़ गये और फिर रूपसिंह से बिदा हुए।

---

# दूसरा अध्याय

## पंच भूत

इलाहाबाद में एक सभा है जिसे हिन्दी साहित्य सभा कहते हैं। इसका काम वही है जो बनारस की नागरी प्रचारिणी सभा का है। इसके लिये एक अलग इमारत भी बन गई है जो 'हिन्दी साहित्य भवन' के नाम से प्रसिद्ध है। उसका सेक्रेटरी उस समय रूपसिंह था। यह अच्छा विद्वान था। इसे साहित्य

रत्न की उपाधि भी मिली थी। इसने अपने सारे मिलने वालों को इसका मेम्बर बना रक्खा था। इसके इष्ट मित्र भी इसमें सम्मिलित थे।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के उत्सव का दिन आया। बड़े बड़े महान विद्वानों के धुआं धार व्याख्यान हुये। गद्य पद्य के प्रशंसा पत्र पढ़े गये, तालियां बजीं और सभापति को धन्यवाद देने के पश्चात सब लोग वहां से बिदा हुए।

सुजानसिंह ने पहले ही से प्रबन्ध कर लिया था कि इस उत्सव के पश्चात् पांचों मित्र किसी विशेष स्थान पर इकट्ठे हों और सुदर्शनसिंह अपने सफर की डायरी सुनाये। यह केवल बहाना था। बात यह थी कि लक्ष्मणसिंह के विषय में थोड़ा बहुत हाल उसके मुँह से यह लोग सुनना चाहते थे।

सभा से उठने पर पांचों जार्ज टाउन में पहुंचे जहाँ सुदर्शन सिंह का बंगला था। नौकरों ने लोगों के खान पान और स्वागत का प्रबन्ध पहिले से ही कर रक्खा था। आते ही यह टेबुल पर बैठे, खाना खाया और सिग्रेट पीया। सुदर्शनसिंह सात्विकी आहार करता था और अकेले कभी खाना नहीं खाता था। वह कहा करता था कि जब तक दो चार मित्रों के साथ खाना न खाया जाये तब तक खाने का स्वाद और आनन्द नहीं मिलता।' इसमें कुछ सचाई भी है। अंग्रेज लोग खाते समय बातचीत भी करते जाते हैं और खाते भी जाते हैं। यह बातचीत उनके लिये नमक सुलेमानी का काम देती हैं। हिन्दुओं का सिद्धान्त इसके विरुद्ध है। शास्त्रों की आज्ञा तो यह है कि पहले पांच ग्रास प्राणों को भेंट हो और चुपचाप रहकर भोजन किया जाय। अब कोई इस नियम का पालन नहीं करता। धर्म की और बातों की तरह इसका भी ध्यान लोगों ने छोड़ दिया। साथ मिलकर खाने में खाना बहुत खाया जाता है। इसे सब

जानते हैं। अकेले खाने में यह बात नहीं रहती। जब यह खा पी चुके सूखे मेवों की तस्तरी सामने आई। ह्विस्की की बोतल और शीशे के गिलास भी साथ साथ थे। पश्चिमी सभ्यता के सिलसिले में यह रिवाज भी आज कल के लोगों में फैल गया है। लक्ष्मण जैसे खाने पीने में सबसे बढ़ा हुआ था वैसे ही बोतल उड़ेलने में भी सबसे बढ़ चढ़ कर निकला। गर्मी बढ़ी और वह बड़बड़ाने लगा। इन पाँचों के अतिरिक्त वहाँ और कोई नहीं था। रूपसिंह ने सुदर्शनसिंह से नई कोठी के विषय में बातचीत छेड़ दी। लक्ष्मणसिंह बीच में बात काटकर बोल उठा—'इन बातों का उन्हें क्या पता है! यह पन्द्रह दिन से यहां थे ही नहीं। मुझसे पूछो। कलकत्ते से इतना सामान बर्न कम्पनी ने भेजा। बम्बई से इतनी विलायती ईंटें आईं। आगरे से इतने रुपये के संगमरमर मँगवाये गये इत्यादि इत्यादि ...।' इस सिलसिले में उसके मुँह से एक भी ऐसा शब्द नहीं निकला जिससे वह पकड़ा जाता। यह नशे में भी अपने आपे से नहीं जाता था। इधर उधर की गप शप होती रही परन्तु इसने अपने आप को बहुत ही सम्भाल रक्खा था। जब इस ढंग से काम नहीं निकला लोगों ने सुदर्शनसिंह से पन्द्रह दिन की डायरी पूछी। यह सच्चा, खरा अभय और मित्रों का विश्वास करने वाला मनुष्य था। इसका भीतर बाहर एक था। इसने लड़की से मिलने, अँधेरे गार में जाने, हड्डियों और खोपिड़यों के ढेर देखने, तहखाने के मन्दिर की सैर करने और लड़की के साथ विवाह पक्का होने की बात-चीत कह सुनाई।

सब के सब आश्चर्य करने लगे।

भवानीसिंह ने कहा—'यह तो अलिफ़ लैला (सहस्ररजनी) की कथा से कम मनोरंजक नहीं है।'

सुजान सिंह बोल उठा—'तुमने चन्द्रकान्ता के तिलस्मी नक्शों को अपनी आंखों आप देख लिया।'

रूप सिंह स्वभाव का गम्भीर था। उसने पूछा—'इस तह-खाने और मंदिर के विषय में क्या समझा?'

सुदर्शन सिंह बोला—'मैंने यह समझा है कि जगह बहुत पुरानी है। कम से कम बौद्धों के समय की अवश्य हैं। वह ऐसी जगह ढूंढ़ कर एकान्त में रहने के लिये इमारतें बनाया करते थे। गार का पता मिला। वह कँकरीला था। उसे खोदा और पथरीला पाया। उसके अन्दर मंदिर निकला और अपने विचार के अनुसार उसमें शिल्प विद्या से सहायता ली। बौद्ध भिक्षु बेकाम नहीं रहते थे। अवकाश के समय में वह इसी प्रकार के कामों में लगे रहते थे जिसके नमूने बम्बई के पास एलफेन्टा आइल और हैदराबाद के अजन्ता पहाड़ के सुन्दर मन्दिर हैं। यहां जैसा थोड़ा सामान मिला उसी के अनुसार काम किया। जब उनका समय नहीं रहा वह यहां से चले गये। यह जगह शैव सन्यासियों के हाथ लगी। उन्होंने उसमें बहुत कुछ बढ़ा कर उन्नति की और अब तक उसमें रहते हैं।'

रूप सिंह—'क्या यह मनुष्य का माँस खाते हैं?'

सुदर्शन सिंह—'मुझ से गोल मोल बात चीत की गयी। मुझे उसकी जाँच पड़ताल का विशेष अवसर नहीं मिला।'

रूप सिंह—'और वह लड़की! इन साधुओं की लड़की तो वह हो नहीं सकती क्योंकि इनकी स्त्रियां नहीं होती हैं। यह इनके हाथ कैसे लगी? और उन्होंने उसे किस लिये अपने पास रख छोड़ा है?'

सुदर्शन—'लड़की तो किसी राजपूत की है। इनके हाथ कैसे लगी इसका पता नहीं लगा। लड़की ने इस रहस्य को

बतलाने का बचन दिया था परन्तु गंगा बढ़ी और गार क मुँह बंद हो गया। कई दिनों तक मैं उसकी खोज में रहा अन्त में पिताजी के कहने पर इलाहाबाद चला आया। अब बरसात के पीछे फिर जाने का विचार है। यह जगह दूसरी ओर चौरस पृथ्वी से अवश्य मिली हुई है। पता लग जायगा। यह कोई कठिन काम नहीं है।'

सुजान सिंह ने लक्ष्मण सिंह की ओर दृष्टि की। उसके मुँह पर हवाइयाँ छूट रही थीं। नशा और मस्ती का कहीं पता तक न था। सुदर्शन सिंह के अतिरिक्त सबने उसकी रंगत देखी। 'क्यों लक्ष्मण! तुम तो ईंटहरा के रहने वाले हो। क्या तुम इसके सम्बन्ध में कुछ कह सकते हो?'

लक्ष्मण सिंह ने अँगड़ाई ली। 'तहखाना और मन्दिर तो मैं ने नहीं देखा। सुदर्शन सिंह आँखों से देख आये हैं। उन्हें सच्चा समझना चाहिये। धन तुलसी नामक गांव के पास एक और गाँव है, जिसका नाम ओंकारपुर है। गाँव को तो नदी बहा ले गयी। अब केवल उसका नाम ही नाम है। हाँ, ऊँची जगह पर ओंकार महादेव का मंदिर है। वह साधारण इमारत है। उसमें शैव मत के कई साधू रहते हैं। महन्त को मैं जानता हूं। यह बचपन से सुनता चला आ रहा हूं कि मन्दिर से मिला हुआ एक बहुत बड़ा और गहरा तहखाना है। इसमें साधुओं के अतिरिक्त और कोई नहीं जाता। इतना और भी सुना है कि बम्बई के आस पास से मरहठे ब्राह्मण अधिकता के साथ आते रहते हैं। वह महन्त जी के प्रेमी हैं। जब इनमें से किसी को दीक्षा देनी होती है तो वह उन्हें एक साथ एक-एक करके तहखाने में ले जाते हैं और उनके मत के अनुसार उपदेश दिया जाता है। यह बातें बहुत दिनों से गाँव में सुनी जाती हैं। गाँव का कोई मनुष्य महन्त जी का चेला नहीं है,

इसलिये किसी को तहखाने में जाने का अवसर नहीं मिला। वह अब तक एक गुप्त रहस्य बना हुआ है। मैं आज पहिली बार सुदर्शन सिंह से उसका हाल सुन रहा हूं। अब मैं आप जाकर इन सब बातों का पता लगाऊँगा।'

सुजान सिंह—'और यह लड़की ?'

लक्ष्मण सिंह—'यह लड़की गांव के एक राजपूत की है। वह बहुत बड़ा आदमी है। उसके सन्तान नहीं होती थी। उसने महन्त जी को घेरा। उन्होंने उसकी स्त्री को दवा खिलाई और आशीर्वाद दिया। राजपूत ने पहिली संतान को मंदिर में चढ़ा देने की प्रतिज्ञा की। यही लड़की उसकी पहिली सन्तान है। अपने बचनानुसार उसने लड़की को मंदिर में चढ़ा दिया। महन्त जी नहीं चाहते थे कि लड़की मन्दिर में आये परन्तु राजपूत प्रतिज्ञा का दृढ़ और हठीला निकला। वह वहां उसे छोड़ गया। महन्त जी ने पाल लिया। राजपूत के इस समय चार लड़के हैं परन्तु लड़की को न मां बाप देखना चाहते हैं और न वह उनसे मिलने की इच्छा रखती है। महन्त जी अंग्रेजी फारसी और संस्कृत के पूर्ण विद्वान हैं। उनके और शिष्य भी पढ़े लिखे हैं। सबने लड़की को पढ़ाया लिखाया। वह बड़ी समझ बूझ वाली भी है। समाचार पत्र और मासिक पत्र मंगा मंगा कर पढ़ती रहती है। मन्दिर के पुस्तकालय की सारी पुस्तकों को चाट गयी। वह मन्दिर की लालड़ी है। महन्त जी उसे गौरव की दृष्टि से देखते हैं। वह बड़ी ही पंडिता और सुशीला है। ऐसी लड़की लाखों में एक होती होगी। वह मन्दिर से बाहर नहीं जाती। इतना तो मैं जानता हूं।'

सुजानसिंह— क्या इस मन्दिर के लोग मनुष्य का मांस खाते हैं ?'

लक्ष्मणसिंह—'राम ! राम !! मैंने कभी ऐसा नहीं सुना। महन्त और उसके शिष्य सज्जन पुरुष हैं। चरस, गाँजा और सुल्फा तो अवश्य पीते हैं, भंग भी छनती है परन्तु वह मदिरा मांस का नाम तक नहीं जानते। यदि कोई बात होती तो वह छुपी थोड़ा ही रह सकती थी।'

सुजानसिंह - 'सुदर्शन ने आप अपनी आँखों मुर्दों की हड्डियों और ठठरियों का ढेर देखा है। इसका कारण क्या है ?'

लक्ष्मणसिंह—'मैं नहीं जानता।'

थोड़ी देर सब चुपचाप रहे।

रूपसिंह बोल उठा—'यह विचित्र रहस्य है'

सुजानसिंह - 'सच भी जान पड़ता है।

भवानीसिंह ने कहा—लक्ष्मणसिंह की बातों से भी उसके होने का प्रमाण मिलता है।' लक्ष्मणसिंह कब चुप रहने वाला था बोल उठा —'मैंने जो कुछ कहा वह मेरी आंखों से देखी और कानों सुनी बात है। मन्दिर के विषय में न मैंने किसी से कुछ सुना है और न कभी उसके अन्दर जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।'

सुदर्शन सिंह—'जब मैं ने अपनी आंखों देखा तो वह झूँठ कैसे हो सकता है।' सब ने एक स्वर में कहा—जगह तो देखने योग्य होगी। समय मिलने पर कभी चलना चाहिये।'

असली बात तो खुली नहीं और ही बात उसके साथ निकल आई। और चारों तो वहाँ से विदा होकर चले गये,

सुदर्शन सिंह अपने बँगले में रह गया।

# तीसरा अध्याय

## लक्ष्मण और सुदर्शन

दानी के हाथ में धन कैसा? आया और गया। सच्चे प्रेमियों को चैन कहाँ! उन्हें तो तड़प मार डालती है। दिल की लगी कैसे बुझे? इसकी चिनगारी मन और शरीर को जला देती है।

लक्ष्मण सिंह ने जब सुना कि लड़की ने सुदर्शन सिंह के साथ विवाह करने का बचन दिया है, उसकी छाती पर सांप लोटने लगे। द्वेष और ईर्ष्या ने अपना गहिरा रंग जमाया। वह कई वर्ष से इसी ताक में रहा होगा। यही कारण है कि सुदर्शन की बातें सुनते ही उसका मुँह पीला पड़ गया। भवानी सिंह, सुजान-सिंह और रूप सिंह तो भाँप गये कि कुछ न कुछ दाल में काला अवश्य है परन्तु एक दम चुपके ही रहे। सुदर्शन अल्हड़ और हृदय का पवित्र था। उसने उसकी रंगत के उतार चढ़ाव को नहीं देखा। यदि देखता भी तो उसे समझ नहीं सकता था। वह लक्ष्मण को अपना सच्चा मित्र मान चुका था। उसकी दृष्टि इसके दोषों पर कभी जाती ही नहीं थी।

दूसरे दिन प्रातःकाल लक्ष्मण बँगले पर आया। वह अभी सोरहा था। रात के देर तक जगने के कारण दिन चढ़े तक सोना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। खानसामा ने जगाने से इंकार कर दिया और कहा — 'बाबू का हुक्म है कि कोई न जगावे।" यह बरामदे में बैठ गया। खानसामा ने चाय बनाई।

यह वहीं आराम कुर्सी पर बैठ कर पीने लगा।

सुदर्शन उठा, चाय पी, फिर शौचादि से निवृत होकर स्नान किया। अपने कमरे में गया और लक्ष्मण सिंह को बुला कर पूछा—'कहो इतने सवेरे कैसे आये?" लक्ष्मण ने उत्तर दिया —'हिसाब किताब दिखाना है। आज मैं घर जाना चाहता हूँ।"

सुदर्शन -- "यह तुम लौट कर दिखा सकते थे। जल्दी किस बात की है।"

लक्ष्मण :—"देर हो गई है। महिनों से तुमने हिसाब नहीं देखा।"

सुदर्शन :—"तो फिर हुआ क्या?"

लक्ष्मण--'तुम्हारे साथ होने का फल मुझे यह मिल रहा है कि मैं बहुत बदनाम हो रहा हूँ। हम दोनों को बहुत सम्भल कर रहने की आवश्यकता है। मेरे मुँह पर कोई नहीं कहता परन्तु पीछे यही बात होती है कि मैं तुमको लूट रहा हूँ।"

सुदर्शन हँसा—'मैं जानता हूँ।'

लक्ष्मण—'यह अच्छा हो कि हिसाब तो कम से कम देख लिया करो!'

सुदर्शन--'अच्छा! देखा जायेगा, परन्तु यह तो हिसाब देखने का समय नहीं है। मैं तुम्हें अपना विश्वास पात्र मित्र समझता हूँ। जब तुम घर से आना तो दिखा देना। मैं देख लूँगा। यदि इस समय तुमको इमारतों के लिये रुपयों की आवश्यकता है तो चैक बुक (Cheque book) तुम्हारे पास हैं। लिख कर दो। मैं उस पर अपने हस्ताक्षर करदूँ।'

लक्ष्मण सुदर्शन के रग रग का हाल जानता था। वह तो यह चाहता ही था। बँगले के खर्च की बात छेड़ दी। फिर

उन गाँवों का हाल सुनाने लगा जो उसके बाप ने अपने जीवन में सुदर्शन के नाम अलग कर दिये थे। इनका भी प्रबन्ध इसने लक्ष्मण सिंह के हाथ में दे रक्खा था। इमारत का खर्च अंधा धुन्ध और गाँव की यह दशा थी कि नौ आमद और तेरह उधार। जब देखो मुकदमे छिड़े रहते थे। कहने वाले असत्य नहीं कहते थे कि लक्ष्मण ने अपने ऊपर विश्वास करने वाले मित्र को धोके में डाल रक्खा था और उसे दोनों हाथों से लूटना खसोटना आरंभ कर दिया था। उसे छुट्टी कम मिलती थी। आप देख भाल करना तो दूर रहा इसे इतना भी पता नहीं था कि क्या हो रहा है। अब तक सारा समय पढ़ने लिखने, हाकिमों से मिलने जुलने, सरकारी जलूसों में आने जाने और पब्लिक के कामों में सहानुभूति प्रगट करने में व्यतीत होता था। बाप की कमाई आवश्यकता से कहीं अधिक थी और फिर मौरूसी इलाके भी कम नहीं थे। कई बैंकों में नकद रुपया जमा था। बाप को यही धुन थी कि मेरा बेटा मिनिस्टर ( मंत्री ) बन जाय और इस ढंग से उसके घराने की मान मर्य्यादा बढ़ जाये। सुदर्शन की भी यही इच्छा थी परन्तु बाप बेटे के स्वभाव में इतना अंतर था कि वह रात दिन रुपया इकट्ठा करने की युक्ति में लगा रहता था और उसमें लालच नाम को भी नहीं था। लक्ष्मण ने किसी समय इसे जान जोखिम से बचाया था और अपनी जान पर खेल गया था। इस घटना से सुदर्शन उसे अपना सच्चा मित्र और रक्षक समझने लगा। मनुष्य का मन भी एक विचित्र वस्तु है. जिधर झुक गया उधर झुक गया। वह बात भी कुछ ऐसी थी कि यदि पब्लिक में आ जाती तो सुदर्शन सिंह की बदनामी के अतिरिक्त जान से भी हाथ धो बैठना पड़ता। लक्ष्मण सिंह की

धूर्त्तता काम आई और वह बाल बाल बच गया। उस समय से लक्ष्मण को अपना सच्चा मित्र समझने लगा। लक्ष्मण सिंह ने काम ऐसी बुद्धिमानी से किया था कि न तो उसका पता उसके बाप को लगा और न किसी ने कानों कान सुना। केवल दो ही चार मनुष्य इस बात को जानते थे।

सुदर्शन की आज्ञा पाकर लक्ष्मण उसकी लाइब्रेरी में बैठ गया। चैक बुक निकाली, कई चैक लिखे, उसके सामने रख दिये और उसने अपने स्वभाव के अनुसार आंख बंद करके सब पर लिखनेवर (हस्ताक्षर) बना दिये। इसने उन्हें संभाल कर अपनी जेब में रख लिया।

इसके पश्चात् सुदर्शन ने पूछा—'घर कब जाओगे? और कितने दिनों तक वहां रहोगे?'

लक्ष्मण ने उत्तर दिया—'यदि आज न जा सका तो कल जाऊँगा। मजदूरों को चिट्ठा देना है और जिनके यहाँ से माल आया है उनका रुपया चुकाना है। अपने दफ्तर का काम मैंने कर लिया है। आज यह भी कर लूँगा। फिर घर चला जाऊँगा।'

'और कब तक आओगे?'

'दो तीन दिन! इससे अधिक मैं न रहूँगा!'

'कोई आवश्यक काम है?'

'हां! कुछ प्राइवेट बातें हैं।'

'तुमहैं अपने लिये रुपयों की आवश्यकता तो न पड़ेगी?'

रुपये का नाम सुना और मुँह में पानी भर आया। बड़ा ही लालची मनुष्य था और फिर फिजूल खर्च भी परन्तु उसकी फिजूल खर्ची भी हिकमत के साथ थी। यदि खर्च में तंगी करता तो फिर बड़ी सोसाइटियों में उसे घुस पैठ करने का अवसर न मिलता।

वह सुदर्शन को उत्तर देने में सोच विचार करने लगा। सुदर्शन समझ गया कि इसे रुपयों की आवश्यकता है। उसी समय चैक बुक मांग कर पाँच सौ का चैक लिख दिया।

लक्ष्मण सिंह को चैक देकर उसने आप ही छेड़ा—'कल रात तुमने मेरी बातें सुनी, कहो! तुम्हारी क्या सम्मति है?'

'कौन सी बात?'

'मैं उस लड़की से विवाह करना चाहता हूँ जो गंगा के किनारे मिली थी।'

'क्या वह सचमुच तुमको चाहती है?'

'इसमें सन्देह ही क्या है?'

इस उत्तर के सुनते ही लक्ष्मण का मुँह पीला पड़ गया। सुदर्शन ने उधर ध्यान नहीं दिया। लक्ष्मण ने सोच कर कहा—'ऐसी बातों में मित्रों की सम्मति काम नहीं आती है। ईश्वर की कृपा से आपके माँ बाप जीवित हैं। इस विषय में उनही से पूछना उचित है।'

सुदर्शन हँसा—'अब वह समय लद गया।'

लक्ष्मण—'कौन समय?'

'जब माँ बाप गुड्डी गुड्डों के खेल की तरह लड़कों का विवाह करते थे। अब तो वह समय है कि लड़के ने लड़की को पसन्द कर लिया और बस विवाह हो गया।'

लक्ष्मण—'वह समय अब भी है। यदि इसकी कभी आवश्यकता थी तो वह यही समय है। बड़े बूढ़ों की सम्मति से अवश्य ही लाभ उठाना चाहिये।'

सुदर्शन—'परन्तु पिता जी अपनी सम्मति कदापि न देंगे। उनकी तो यह इच्छा होगी कि मैं गवर्नमेन्ट का मिनिस्टर बनूँ और मेरा विवाह राजा के यहाँ से हो।'

लक्ष्मण—'इसमें तो कोई बुराई नहीं है। सांसारिक सम्बंध की भी उन्नति का ध्यान रखना आवश्यक है।'

सुदर्शन—'और जब दिल किसी पर आ गया हो तब ?'

लक्ष्मण—'इसका उत्तर मैं क्या दूं ! मैं तो यही कहूँगा और बार बार कहूँगा कि पिता जी की आज्ञा के बिना इस काम में हाथ डालना ठीक नहीं है।'

सुदर्शन—'मैं उनसे यह बात कह भी नहीं सकता। मैं जानता हूं इसका उत्तर वे क्या देंगे।'

लक्ष्मण—'वह क्या उत्तर देंगे ?'

सुदर्शन—'वह हजारों तरह के मीन मेख निकालेंगे और यदि कहीं सुन पायें कि मन्दिर के तहखाने में मनुष्य की ठटरियों का ढेर है तो वह एक दम खटक जायेंगे।'

लक्ष्मण के लिये यह बातचीत बहुत दुखदायी थी। वह चाहता था कि अपनी ओर से कोई सम्मति न दे और कोई दूसरी बात छिड़ जाये। उसकी इच्छा अनुसार अवसर मिल गया।

'क्या तुमको विश्वास हो गया कि वह लोग मनुष्य का मांस खाते हैं ?'

'मैं कुछ नहीं कह सकता। हां ! अपनी आंखों से उनका ढेर देखा है।'

'तब तो सन्देह किया जा सकता है।'

'परन्तु वह लड़की तो मनुष्य का मांस नहीं खाती। मुझे तो उस लड़की से काम है।'

'लो ! जिस बात के सुनने से भागता था वही बात फिर सामने आ गई।

'क्या पता कि वह खाती है या नहीं खाती !'

'उसने मुझ से आप कहा था कि वह माँस नहीं खाती।'

'और तुमने विश्वास कर लिया ?'

'हाँ ! मैं ने उसका विश्वास कर लिया। तुम जानते हो विश्वास करना मेरा स्वभाव सा हो गया है। चाहे इससे मुझे हानि ही क्यों न पहुँच जाये !'

'परन्तु विश्वास कैसे आ गया ?'

'जैसे मैं तुम्हारा विश्वास करता हूं।'

'बिना समझे बूझे विश्वास कर लेना बहुत बड़ी भूल है। कौन जाने बातचीत के समय किसी के मन में क्या भाव रहा हो ! यहां इस बात की जाँच कर लेना आवश्यक है।'

'वह लड़की क्या है साक्षात् सौन्दर्य की देवी है। उससे ऐसी आशा नहीं की जा सकती।'

'हर चमकने वाली वस्तु सोना नहीं होती।'

'अहा ! तुमने उसे नहीं देखा। यदि देखा है तो गहरी दृष्टि से नहीं देखा है। वह तो ऐसी जान पड़ती है जैसे देवलोक से पृथ्वी मण्डल पर उतर आई हो।'

लक्ष्मण आंखें चढ़ा कर होठ दबाने को ही था कि कुछ सोच समझ कर संभल गया। छुट्टी मांगी। काम काज का बहाना किया। इसे घर जाने की तो आज्ञा दे दी परन्तु यह न समझ सका कि इस समय लक्ष्मण ने 'हाँ' या 'नहीं' कुछ क्यों नहीं कहा। यह पहिला अवसर था कि वह सम्मति देने से कतरा गया और एक दम उठ खड़ा हुआ।

---

# चौथा अध्याय

## लक्ष्मण और ओंकार नाथ

लक्ष्मण हृदय का बड़ा ही गहरा था परन्तु अपने आपको

सँभाल नहीं सकता था। साहसी भी था परन्तु उसके भाव बहुत ही निकृष्ट थे। बदला लेने में इतना बढ़ा चढ़ा था कि इंटहरा के रहने वाले उसके किसी काम में छेड़ छाड़ नहीं करते थे।

उसने लड़की के विषय में जो जो बातें कहीं थी सब सच थीं। इससे अधिक वह कुछ नहीं जानता था।

इसकी दृष्टि सदैव से इस लड़की पर थी। उसके सामने ही उसका जन्म हुआ। उसका नाम मां ने मृणालिनी रक्खा था। यह नाम बड़ा ही सुन्दर था परन्तु बाप की दृष्टि में उसके लिये प्रेम नहीं था। जब वह महन्त क यहां भेड़ बकरी के बच्चे की तरह फेंक आया, महन्त ने उसका नाम मुण्ड भूषणी रक्खा। यह भद्दा नाम था। मंदिर में इसका पालन पोषण साधुओं को करना पड़ा था। ज्यों ज्यों बढ़ती गयी उनको इससे प्रेम बढ़ता गया और वह देवी की तरह पुजने लगी। शैवों में स्त्रियों को मठ में जगह नहीं दी जाती। वह ब्रह्मचारिणी की हैसियत में कहीं नहीं रक्खी जातीं। वैष्णवों में इसका कुछ रिवाज है परन्तु वह भी कमी के साथ। स्त्रियों के लिये सबसे अच्छी जगह घर में समझी जाती है।

लड़की का बाप नाहर सिंह कहलाता था। उसे लड़की के नाम से चिड़ थी। प्राचीन समय में बहुत से राजपूत जन्म होते ही लड़कियों का गला घोट देते थे। अँग्रेजी राज्य ने किसी तरह इसे बंद किया वरन् सम्भव था कि मृणालिनी बचपन में ही मृत्यु की गोद में सुला दी जाती। महन्त जी के साथ प्रतिज्ञा होने के कारण उसने उसे जीवित रख छोड़ा था और वह मृणालिनी से मुण्ड भूषणी हो गई।

नाहर सिंह कभी कभी मंदिर में आया जाया करता था। जब यह सयानी हुई। महन्त ने उसके लिये वर खोजने

का हुक्म दिया। इसे बुरा लगा। वह इसका नाम भी लेना या सुनना नहीं चाहता था। लड़की सयानी हो गयी लेकिन भूले भी न कभी बाप के घर गई और न उसकी माँ ने ही उसे देखा। वह नाहर सिंह से डरती थी। जिस दिन से महन्त ने उसकी शादी का जिक्र किया नाहर सिंह ने मंदिर का आना जाना भी बंद कर दिया।

लक्ष्मण सिंह की दृष्टि सदा से उस लड़की पर थी। इस सोच में था कि अगर यों ही शादी की इच्छा प्रगट करता है तो मुण्ड भूषणी साधू की लड़की मशहूर हो चुकी है, बिरादरी आज्ञा न देगी। अगर इसकी आर्थिक दशा में परिवर्तन हो जाये तो वह उसे यों ही अपने घर डाल लेगा और फिर गाँव से कोई सम्बन्ध नहीं रक्खेगा। इसके इलाहाबाद आकर रहने का मन्तव्य भी यही था। यहां आकर उसने अँग्रेजी बोल चाल सीख ली। बोलने के साथ कुछ लिखना भी सीख लिया। चलता पुरजा था। बड़े आदमियों में घुस बैठ करके एक अँग्रेजी कम्पनी में सिफारिश करवाई, नौकर हो गया और २००) रुपये तनख्वाह मिलने लगी। इच्छा थी कि तनिक आर्थिक और सामाजिक अवस्था सुधर जाय तो आप ही महंत से चलकर शादी की अभिलाषा प्रगट करे। उसे इधर से संतोष था क्यों कि इसकी दृष्टि में साधु की लड़की को कब कोई गृहस्थी स्वीकार करने लगा था लेकिन समय ने उसके इस ख्याल को गलत कर दिखाया। सुदर्शन सिंह ने बीच ही से हल्की गेंद की तरह इस नव विगसित फूल को तोड़ लेने का साहस किया। वह उसका जैसा तैसा दोस्त था फिर भी सुदर्शन का मुण्डभूषणी पर हस्तक्षेप करना उसे अत्यन्त बुरा लगा सुदर्शन को तो वह अपने हाथ का खिलौना समझता

था लेकिन समय पर यह खिलौना जीता जागता पुरु उसका वादी प्रतिवादी बनकर सामने खड़ा हो गया। वह करता भी तो क्या करता सुदर्शन चाहे लाख सरल स्वभाव वाला रहा हो लेकिन फिर भी वह राजपूत था। इस विषय में उसे समझा बुझा कर राह पर लाना अत्यन्त कठिन काम हो गया। वह दो दिन तक लगातार उस विषय पर सोचता रहा। कोई बात समझ में नहीं आई। निश्चयात्मक बुद्धि ने भी सहायता नहीं की और न अहंकार ने उसे दृढ़ाया। केवल मनन और चिन्तन से क्या हो सकता था। अन्त में वह इस बात पर आकर ठहरा कि महन्त से ही यह गुत्थी सुलझेगी। ऐसा सोच कर वह इँटहरा चला आया।

महन्त का नाम ओंकार नाथ था। शुद्ध हृदय, निष्काम, धर्मात्मा, सिद्धान्त का पक्का, उच्च भाव रखने वाला। साधुओं के जो गुण होते हैं वह सब इसमें कूट कूट कर भरे थे। पहिले यह किसी महकमे में अफ़सर था। अंग्रेजी, संस्कृत और फारसी आदि भाषा में निपुण और प्रवीण था। किसी बात पर अंग्रेज हाकिम से अनबन हो गयी। नौकरी छोड़ कर साधू का बाना पहिन लिया और बड़ी दृढ़ता के साथ वह साधू धर्म का पालन करने लगा।

लक्ष्मणसिंह इलाहाबाद से फल, फूल, मिठाई आदि भेंट लेकर आया। पहिले लड़कपन में और नौकर होने से पहिले भी वह आया जाया करता था क्योंकि यहाँ उसके हृदय का केन्द्र बन चुका था।

सूचना दी गई। महन्त आप ऊपर चला आया। तह-खानों को उसने पूजा, ध्यान और विचार का स्थान बना रक्खा था। मंदिर के सामने चौकी पर आकर बैठ गया। इसने सामने

भेंट रख कर दण्डवत की।

महन्त ने कहा—'अब तो तुम बड़े आदमी हो गये हो!'

लक्ष्मण ने सभ्य और सत्कार जनक रीति में उत्तर दिया—

'यह सब आप ही की कृपा और अनुग्रह से है।'

'कैसे आये?'

'दर्शन के लिये।'

'क्या तनख्वाह पाते हो? कहां नौकर हो?'

'दो सौ रुपया मासिक वेतन है। एक व्यापारी अंग्रेजी कम्पनी का एजेण्ट हूँ।'

'खुश हो?'

'खुशी तो आप जैसे महात्माओं के चरणों में रहती है। हम जैसे सँसारियों को वह कहाँ मिलती है। जब कभी आप जैसे देवताओं का दर्शन मिल जाता है तब उसका कुछ हिस्सा हमारे हाथ भी लग जाता है।'

'लक्ष्मण! तुमने बड़ी उन्नति की। ऐसा ही चाहिये। मैं तुमको देख कर बहुत प्रसन्न हुआ।'

'यह तुम्हारी विशेष करुणा का परिणाम है और मैं हूं भी तो बचपन से आपका सेवक।'

'बहुत अच्छा किया, मिल लिया। यह मेरे और आवश्यक कामों का समय है। यदि यहां रहना हो तो फिर आना, मैं मिलूँगा।'

यह कह कर साधू उठ खड़ा हुआ। इसने नमस्कार किया। वह अपने काम में लगा। यह घर चला आया। दिन भर सोचता रहा कि किस प्रकार महन्त जी पर अपने भाव को प्रगट किया जावे!

सायंकाल के समय फिर आया। साधारण बातचीत हुई

मगर फिर भी उसे अपने मन्तव्य के जताने का अवसर नहीं मिला।

प्रातःकाल पूजा पाठ का समय होता है। मिलने मिलाने का समय पूछ पाछ कर दूसरे दिन यह तीसरे पहर को फिर आया।

महन्त ने पूछा-'यहाँ कब तक रहोगे ?'

लक्ष्मण ने उत्तर दिया—'अधिक से अधिक यहां कल तक और रहूँगा।'

महन्त—'क्या मेरे पास किसी विशेष काम से आये हो ?' तुम कुछ कहना चाहते हो ? तुम्हारी आकृति से कुछ ऐसा विदित हो रहा है। कहते क्यों नहीं हो ?'

लक्ष्मण—'आप अन्तर्यामी और घट के जानने वाले हैं। मैं क्या कहूँ।'

महन्त हँसा—'अब तुम बहुत होशियार, समझ बूझ वाले और सयाने हो गये हो। ऐसी बातें भक्तों के मुंह से कुछ अच्छी लगती हैं। जब तक मैं कोई बात न सुन लूं तब तक क्या उत्तर दूं ! बिना सुने हुये मुंह खोलना उचित नहीं है।'

लक्ष्मण – 'मैं एकान्त में कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।'

मन्दिर के समीप महन्त ने एक छोटा सा कमरा बना रक्खा था। उसके भीतर चला आया। लक्ष्मण को बुला लिया। वह आया। दोनों बैठ गये।

'कहो क्या कहते हो ?'

'आप से अपना हार्दिक मन्तव्य क्यों और कब तक छुपाऊं ! सुनिये ! आपके पास जो लड़की मुण्डभूषणी रहती है मुझे उसका बचपन से ध्यान है। आप इसकी शादी करना

चाहते हैं। वह ब्रह्मचारिणी न रहेगी। मैं इसी अभिप्राय से आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूं।'

महन्त चुप! मुंह बंद! लक्ष्मण को गहरी दृष्टि से थोड़ी देर तक देखा किया। मन में सोचता रहा, फिर उसे उत्तर दिया—'लड़की और की है। वह यहां फैंक गया। मैंने उसके पालन पोषण का भार अपने ऊपर लिया। तुम इस बात को को जानते हो। मैं लड़की का बाप नहीं हूं और न उसका सम्बन्धी हूं। यह एक बात हुई। दूसरे लड़की आप सयानी हो चली है-समझ बूझ वाली है, अपने लाभ या हानि को आप सोच सकती है। यह दूसरी बात है। मैं साधू हूं। व्यवहारिक और सांसारिक बातों से मैं प्रयोजन नहीं रखना चाहता। यह तीसरी बात है। अब तुम जो कहो मैं सुनूँ।'

लक्ष्मण—'बाप तो न उसका नाम लेता है न उसे देखना चाहता है। उसे कोई कहे तो क्या कहे! और क्या सुने! और क्यों कहे! उससे काम नहीं निकल सकता।'

महन्त—'तो फिर मैं मुण्डभूषणी को बुला लेता हूं। उससे बात चीत करलो। वह साधारण शर्मीली लड़की नहीं रही।'

महन्त ने आवाज दी—मुण्डभूषणे!'

नीचे से आवाज आई 'अभी उपस्थित होती हूं।'

और एक सादी धोती पहिने हुये सुन्दर रूप वाली लड़की धीरे धीरे पग धरती हुई आई, पृथ्वी पर झुककर दण्ड प्रणाम किया और हाथ बाँध कर सामने खड़ी हो गई—'कहिये! क्या आज्ञा है?'

महन्त—'मुण्डभूषणी! तू जीवन पर्यन्त ब्रह्मचारिणी नहीं रहना चाहती। लक्ष्मण को तू जानती है। यह किसी असाधारण भाव को लेकर यहां उपस्थित हुआ है।'

'वह भाव क्या है ?'

'अगर तू चाहे तो यह तेरे जीवन का साथी बनने को तैयार है।'

लड़की ने लक्ष्मण को एक दृष्टि से देखा। इसमें सिंह वृत्ति के लक्षण थे। उसकी दशा और प्रकार की थी। यह सूक्ष्म अंग, सूक्ष्म वृत्ति और सूक्ष्म विचार वाली थी। वह उसके विरुद्ध स्थूल बुद्धि, स्थूल जीवन और स्थूल व्यवहार वाला मनुष्य था। इसमें प्राकृतिक सरलता और बचपन के सारे गुण निखार पर थे जिन्हें साधू की शिक्षा ने बहुत प्रभावशाली बना रक्खा था। लक्ष्मण में वह बाते न थीं। संसार के व्यवहार और वर्तमान समय की बनावटी सभ्यता ने कुछ का कुछ बना रक्खा था। दोनों की आंखें मिली। यह जैसी थी वैसी ही खड़ी रही। वह मन में काँप उठा। प्रकृति (स्वाभाविकता) और बनाबट का सामना हुआ। बनावट अगर प्रकृति के आधीन रहे और प्रकृति उसे अपनी रीति से संवार और सिंगार दे तब तो दोनों मिल जुल कर फब जाती है और अगर निरी बनावट ही बनावट है और प्रकृति उसे सहायता नहीं देती। तो फिर यह बनावट बहुत भद्दी प्रतीत होने लगती है। स्त्री और पुरुष सत् के दो अंग हैं। ऊँचे जगत में इनको पुरुष और प्रकृति कहते हैं। अगर पुरुष में पुरुषत्व के साथ कुछ स्त्रीपन का अंग मिला रहता है तो वह अच्छा लगता है। ऐसे ही स्त्री में कुछ पुरुषत्व का भाव हो तो बहुत सुन्दर जँचती है। न केवल पुरुष ही अच्छा है न केवल स्त्री ही अच्छी है किन्तु दोनों मिल मिला कर पूर्ण जीवन बनता है। पुरुष और प्रकृति का मेल ही रचना का मूल कारण है। अगर एक दम एक दूसरे के प्रतिकूल हैं तो फिर सौन्दर्य का अभाव हो जाता है और सन्तान वृद्धि के नियम को धक्का लगता है। एक को दूसरे से

प्रतिबिम्बित होने की आवश्यकता है। वह एक दूसरे के अनुकूल रहें। उनमें एकता हो तो अनेक बार जगत का दृश्य उत्पन्न होता है और एक में अनेक और अनेक में एक का तमाशा आनन्ददायक हो जाता है।

महन्त ने कहा—'मुण्डभूषणे ! तूने कुछ उत्तर नहीं दिया।'

मुण्डभूषणे ने, जुबान खोली—'भगवान ! मैं खड़ी हूं आप बैठे हैं। मुझे बैठने की आज्ञा नहीं मिली। फिर इस असम अवस्था में आप मुझसे उत्तर की आशा रखते हैं !'

महन्त— लक्ष्मण ! तुमने मुण्डभूषणे का उत्तर सुन लिया ?'

लक्ष्मण—'मैंने कुछ नहीं समझा।'

महन्त— मुण्डभूषणे ! तू संकेत और सैन बैन से बातें करती है। सैन बैन को सब लोग नहीं समझते। अच्छा बैठ जा।

'वह सभ्यता के साथ बैठ गई।'

महन्त—'लक्ष्मण ! मैंने जो प्रश्न किया मुण्भूषणे ने उसका स्पष्ट और उचित उत्तर दिया। तूने उसे नहीं समझा। मैं समझ गया। अब तुम दोनों दिल खोल कर या तो मेरे सामने बात चीत करो या अगर शरमाते हो तो मैं चला जाऊँ और आपस में खुल खेलो। जो कहना सुनना हो कह सुन लो।'

लक्ष्मण वैज्ञानिक दृष्टि से ज्ञान और योग के मर्म की समझ नहीं रखता था। उसे निश्चय हो गया कि वह किसी उच्च श्रेणी के पूर्ण व्यक्ति के सामने बैठा हुआ है जो आत्मिक और वैज्ञानिक भाव में उससे बहुत बढ़ी चढ़ी है। वह मान गया कि मुण्डभूषणे बहुत ही योग्य और पवित्र स्त्री है और उसकी इसके साथ कोई समानता नहीं है। वह स्वर्गीय और यह नीच श्रेणी का जीव है। फिर भी उसने साहस करके महन्त से कहा—'आप बैठिये। मुझे जो कुछ निवेदन करना था कर

चुका।'

महन्त—'मेरी अवस्था मध्यस्थ की है। तुम आप अपना निबटारा करो।'

लक्ष्मण ने मुण्डभूषणे से कहा—'मेरे जीवन की गढ़त तेरे प्रेम भाव से हुई है। मैं वह नहीं रहा जो पहिले था। प्रेम ने बचपन में दिल में जगह करली। उसकी वृद्धि होती गई। अब तक में चुप था। अब कहने सुनने का समय आ गया। यह मेरे आने का कारण है।'

मुण्डभूषणे—'भगवन! यह विचार फल दायक हो। दूध गर्म हुआ। उसमें खटाई का जामन डाला गया। दही बन गया। अब उसमें से मक्खन घी पेड़े बर्फी मलाई सब कुछ बनेंगे। एकता ने जामुन का दामन स्वीकार किया। अब उसका पग वृद्धि की ओर चलेगा। अनेकता में एकता का भाव हो तब तो ठीक है, नहीं तो पृथ्वी और आकाश का भेद रहेगा। इसमें दिन लगते हैं।'

संसारी जीव इन सैन बैंन की बातों को क्या समझे! वह हक्का बक्का हो गया। लेकिन कुछ कहना तो था ही मुँह खोला-'एक जाति। एक पाँति। उनके मिलाप में क्या हर्ज है।'

इसके कहने का तात्पर्य था कि 'हम दोनों राजपूत हैं।

मण्डभूषणे ने कहा :—

'जाति न पूछो प्रेम की, पूछ लीजिये भाव।
जाति पांति का नाम नहीं, चढ़े जो प्रेम की नाव॥'

लक्ष्मण—'मैं इससे क्या समझूँ?'

मुण्डभूषणे—'न हाँ, न नहीं। न एति न नेति। न यह न वह'

लक्ष्मण यह सुनकर दंग रह गया। फिर भी उसे आशा हो गयी कि यह सोचने का समय चाहती है।'

महन्त ने पूछा--'और कुछ कहना सुनना है या बात चीत

समाप्त हुई ?'

लक्ष्मण ने उत्तर दिया —'इस देवी को सोचने के लिये समय की आवश्यकता है। मुझे जल्दी नहीं है। मैं समय देने को तैयार हूँ।'

महन्त—'बहुत अच्छा! अभी तुम रहोगे या आज चले जाओगे ?'

लक्ष्मण—'तीन ही दिन की छुट्टी लेकर आया था।'

महन्त—'अच्छा! तो अब जाओ।'

वह प्रणाम करके उठ खड़ा हुआ लेकिन मुण्डभूषणी की योग्यता का भाव अपने मन में ले गया।

## पाँचवाँ अध्याय

### मित्र से शत्रु

'तुम घर हो आये! बहुत जल्द लौट आये!'

'केवल तीन ही दिन के लिये तो गया था।'

मैं तुमसे कहना भूल गया था कि उस लड़की की खब लेते आना।'

'कौन लड़की ?'

'मुण्डभूषणे! और कौन ? जो मुझे गंगा के किनारे मिली थी'

'हां, याद आ गया। मुझे बहुत दिनों से उसका प्रेम था।'

'और अब ?'

'मैं महन्त से मिला था। जहाँ तक बातों से सम्बन्ध है महन्त तो राजी हैं मगर लड़की शादी करना नहीं चाहती।'

लक्ष्मण की आखिरी बात सुनकर सुदर्शन के मन में संदेह उत्पन्न हुआ।

'महन्त से पहिले जाकर मिलने में कोई न कोई बात अवश्य है। यह आप कह रहा है कि मुण्डभूषणी की चिंता में था।' खटका हो गया। खटका ही नहीं किंतु खुटका भी हो गया। मन के दर्पण में बाल आगया लेकिन मन ऊंचा और हृदय विशाल था संभल गया।

'तुमने मुण्डभूषणे को भी देखा ?'

'हां ! देखा था।'

'बात चीत भी हुई।'

'बात चीत हुई थी ?'

'क्या कहा ?'

'उसे शादी से इंकार है।'

सुदर्शन को आश्चर्य हुआ। लक्ष्मण के मन में बेचैनी आती गई जिसे अब सुदर्शन भी भांपने लगा था। कैसी विचित्र बात थी ! सुदर्शन लक्ष्मण का शत्रु बना हुआ था। मुण्डभूषणी के विषय में प्रश्न करता है और उसे सिवाय सच बोलने के झूठ बोलने का साहस नहीं होता।

लक्ष्मण सच्चा आदमी नहीं था और न वह झूठ बोलने से हिचकिचाता था लेकिन सच के सामने झूठ के पैर नहीं जमते। अगर झूठ को पांव भी लगाये जाते तो वह उखड़ जाते हैं। सुदर्शन ने पंच महाभूतों के समूह में यह कह दिया था कि वह आप महन्त से जाकर मिलेगा। लक्ष्मण को भय था कि अगर वह कहीं जाकर मिला तो सारी बातों की कलई खुल जायगी और उसे मुँह की खानी पड़ेगी, इसलिए सच बोलने ही में भलाई देखी।

'क्या मुण्डभूषणी ने आप तुमसे कहा था कि वह शादी करना नहीं चाहती ?'

"हां ! उसने आप ही कहा था।"

"आश्चर्य है ! मुझसे तो शादी की बातचीत हुई थी और उसने आप मुझे सुझाया था कि महन्त से मिलकर मैं अन्तिम-समझौता करलूँ। क्या तुमने कहीं अपने विषय में तो नहीं पूछा था ?"

अब तक तो टट्टी की आड़ में बातचीत हो रही थी। अब सुदर्शन साफ साफ पूछने लगा। पहिले तो कुछ कुशल भी था। अब बातचीत का और ही ढंग होगया।

"हाँ ! ऐसी बातचीत आई थी।"

"कहीं मेरे विषय में तो कुछ कहना सुनना नहीं हुआ था ?"

"नहीं तुम्हारा तो नाम भी नहीं आया।"

"सच है। महन्त से मैं मिला नहीं। लड़की मेरे नाम निशान से अपरिचित है। वह बहुत सँभलकर बात-चीत करती है। न उसने पूछा न मैंने बताया। दूसरी बार खुलकर बातचीत हुई होती मगर गंगा ने रंग में भंग कर दिया। बाढ़ आ गई। गार का मुँह छुप गया। मैं उसी राह से आया जाया करता था। सम्भव है कि उसने महन्त से मेरे विषय में कुछ कहा सुना भी न हो।"

"सम्भव है कि उसने महन्त से कुछ न कहा हो। नहीं तो कुछ-न-कुछ तो मैंने सुना होता !"

"अब यह बताओ, हम दोनों मित्र हैं और दोनों का एक ही इष्ट है। मुझे भी मुण्डभूषणी का प्रेम है और तुम्हें भी। मैं किसी दशा में तुम्हारा शत्रु या प्रति वादी नहीं होना चाहता था। संयोग को क्या किया जाये। हम दोनों एक ही स्त्री के प्रेम की उलझन में फँसे। वह तुम्हें नहीं चाहती और मुझे चाहती है। हम दोनों की अवस्था में भेद है। अब आशा नहीं है कि तुम उसकी ओर ध्यान दोगे। वह इन्कार कर चुकी है लेकिन वह मुझे चाहती है और मेरे साथ विवाह करने के लिये तैयार

है। अब यह बताओ कि मैं उसके लिये प्रयत्न करूँ तो तुम्हें बुरा तो न लगेगा ?'

बेचारे लक्ष्मण की जान पर आ बनी। एक अलल्हड़ और अन समझ विद्यार्थी उसे कैसे कुँआ झंका रहा है! क्या अच्छा होता कि इस विषय में वह कुछ न कहते न सुनते! लेकिन होने वाली बात हो गयी और उसे रोके कौन! देखो! यह सरल स्वभाव और उदार चित्त वाला शत्रु कैसी निर्भयता और उच्च भाव से उससे प्रश्न कर रहा है और उसे बगल झाँकना पड़ रहा है। सँभल कर बोला: –

"मैंने फिर मिलने का संकल्प किया है।"

"तुम ने अभी तक हार नहीं मानी ?"

'नहीं! संसार आशा पर निर्भर है।"

"फिर मुझे क्या राय देते हो ? मैं क्या करूँ ?"

"कैसी राय ?"

"मैं इस प्रयत्न से अपने आपको रोक रक्खू या प्रयत्न में लगूँ ?"

"यह प्रश्न किस प्रयोजन से किया जा रहा है ?"

"मेरी इच्छा है कि मेरे और तुम्हारे बीच में अनबन न हो। तुम जानते हो मैं हृदय का शुद्ध हूँ। अगर तुमने कह दिया कि मैं उसका पीछा छोड़ दूँ तो मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूं कि मैं केवल तुम्हारे ख्याल से ऐसा करने के लिये हर वक्त तैयार हूं। मैंने मुण्डभूषणी से मिलने का वादा किया था लेकिन गंगा की बाढ़ ने राह बंद करदी। वह मुझ पर इलजाम नहीं लगा सकती। अगर तुम चाहो कि हम दोनों साथ-साथ प्रयत्न में लगे रहे तब भी मैं प्रस्तुत हूं। यह तो किस्मत का आजमाना है। जुये में कोई हारता है किसी की जीत होती है। जिसका पांसा पड़ गया उसी की जीत, जिसका न पड़ा उसकी हार।'

लक्ष्मण इस प्रश्नोत्तर से घबरा गया। वह न केवल क्षुद्र बुद्धि किन्तु क्षुद्र हृदय का भी मनुष्य था। सुदर्शन के समान वह उदार चित्त नहीं था। वहाँ मुण्डभूषणी के सामने लज्जित होना पड़ा था और यहाँ सुदर्शन के विशाल हृदय को देख कर उसके संकुचित मन को नीचा देखना पड़ा। इन बातों की समझ उसे थी। वह समझने को तो समझ गया लेकिन बहुत देर तक उत्तर न दे सका। सुदर्शन उसे सोच में पाकर आप ही बोल उठा:—

'अजी! तो तुम कुछ कहते क्यों नहीं? मुझे तो सब प्रकार से तुम्हारी खातिर मन्जूर है। मैं तुम्हारे लिये अपने निज लाभ से भी हाथ धोने को तैयार हूँ! उसे तुम जानते भी हो। मेरी हानि चाहे हो जाये इसकी चिन्ता नहीं परन्तु तुम्हारा लाभ हो, यह मेरी प्रतिज्ञा है।'

'यही तो मैं नहीं चाहता। तुम्हारी हानि से लाभ उठाना मुझे कदापि स्वीकार नहीं है।'

'तो फिर हम तुम दोनों साथ-साथ ताली ठोंक कर अखाड़े में उतरें। लेकिन भाई! मैं यह कहे देता हूं पल्ला मेरा ही नीचा रहेगा तुम्हारा ऊँचा होगा। तुम्हारे साथ इन्कार है मेरे साथ इकरार है।'

'बात तो कुछ ऐसी ही दिखलाई दे रही है।'

'तो फिर जल्दी निर्णय करलो। अगर तुम निराश हो गये हो तो जाने दो। इस चक्कर में मत पड़ो। मुझ ही को यह पत्थर उठाने दो। यह तुम्हारे बूते का नहीं है।'

वह फिर चुप हो रहा।

'तुम बोलते क्यों नहीं? कुछ तो कहो। जो तुम कहोगे मैं वही करूँगा इसका विश्वास रखो।'

'अच्छा! एक बार फिर मुझे प्रयत्न करने दो। अगर हार

गया तो तुम्हारे लिये मैदान को छोड़ दूँगा। फिर भूले से भी उसका नाम न लूँगा।'

'स्वीकार है ? इस परिश्रम में कितने दिन लगाओगे ?'

'यही दो ढ़ाई महीने। न इससे कम न इससे अधिक।'

'बहुत अच्छा! तो मुझे बराबर खबर देते रहना।'

'इसमें कोई हानि नहीं।'

'लेकिन मित्र! यह तो बताओ उस दिन तो तुमने मुझे राय दी थी कि पिताजी से इस विषय में अवश्य पूछ गछ कर लेनी चाहिये और उन्हीं के कथनानुसार काम होना चाहिये। क्या तुमने आप ऐसा किया ? और अपने सम्बन्धियों से राय ली!'

सुदर्शन ने बहुत बुरी चुटकी ली। लक्ष्मण दिल ही दिल में कट गया लेकिन था सयाना। सोच समझ कर यथोचित उत्तर दिया:—

'मेरी और तुम्हारी अवस्था में भेद है। तुमको ईश्वर ने बड़ा आदमी बनाया है। तुमने बड़े घर में जन्म पाया है। तुमको चारों ओर देखना पड़ेगा। लोक लाज और कुल मर्य्यादा का ध्यान रखना होगा। मेरे लिये इसकी आवश्यकता नहीं है।'

'मानता हूँ। इस समय तुमने निस्सन्देह सच्ची बात कही है। अब फिर कब वहाँ जाओगे ?'

'शीघ्र जाऊँगा। देर न लगाऊँगा।'

'आखिर कब तक ?'

'एक महीने के पीछे। दफ्तर का काम मेरे पास बहुत है।'

'बहुत अच्छा! यह लम्बी मियाद नहीं है। मैं संतोष के साथ तुम्हारा इन्तजार कर सकता हूँ। लेकिन इस बात की प्रतिज्ञा करो कि यदि तुम्हें सफलता न हुई तो फिर मेरे साथ इस काम के लिये इंटहरा जरूर चलना पड़ेगा।'

'क्यों ? क्या लज्जित होने के लिये !'

'इसमें लज्जित होने की कोई बात नहीं है। काम किया, हुआ हुआ, न हुआ न सही ! संसार में मनुष्य उपाय करता है काम नहीं होता। फिर किस किस बात के लिये लज्जित होता फिरे ! फिर वह क्या काम करेगा ! जो घोड़े पर चढ़ता है गिरता पड़ता रहता है। जो अखाड़े में उतरता है कभी ऊपर आता है कभी नीचे। यह साधारण-सी बात है।'

'बहुत अच्छा ! चलूँगा लेकिन मुझे क्यों साथ ले चलोगे ? क्या तुम अकेले पर्याप्त नहीं हो ?'

'मैं तुमको सच्चा दोस्त, भेदी और सहानुभूति रखने वाला समझता हूँ। जब हर काम में साथ रहते हो तो इसमें क्यों न रहोगे !'

'अच्छा ! जैसा कहोगे वैसा ही करूँगा। बहाना न बनाऊँगा। तुम्हें महन्त जी के पास पहुँचाकर अपने घर चला आऊँगा।'

---

# छटा अध्याय

## मुण्डभूषणी और लक्ष्मण

संसार विचित्र है। यहां हर काम के लिये पत्थर का कलेजा होना चाहिये। जो हार न माने और थकावट न समझे वही काम का आदमी होता है। और जिसने एक ही बार हार मान ली और अपने मन को सिकोड़ लिया उससे करते धरते कुछ नहीं बनता। यों तो संसार में सभी मरते जीते और खाते पीते हैं। इन्हें सच्ची सफलता प्राप्त नहीं है। वह कोई और ही वस्तु है।

लक्ष्मण बचपन ही से एक ख्याल को पक्का कर रहा था। थोड़ी सी जो ठेस लगी। उसकी सूरत बिगड़ गई। कुम्हार ने मिट्टी के कच्चे घड़े को गढ़ा, संवारा, सिंगारा, सब कुछ कर लिया लेकिन उसे आग में नहीं पकाया। वह कच्चे का कच्चा ही रह गया। पानी पड़ने पर गल जायेगा, धक्का लगने पर टूट जायेगा। धरे धरे उसे नमक खा जायेगा। वह किसी काम का भी नहीं हुआ। इसी तरह कमजोर ख्याल को दृढ़ नहीं कर लिया जाता तो कमजोरी उसे दबोच रखती है। यह दृढ़ता अभ्यास से आती है और अभ्यास एक दिन का काम नहीं है इसमें दिन लगते हैं।

सुदर्शन में और लक्ष्मण में भेद था। लक्ष्मण में पहिले ही से दुबिधा थी। इसलिये उसने कभी मन्दिर में जाकर अपने भाव को प्रगट तक नहीं किया।

सुदर्शन पहिले ही से पक्का था। साहस के साथ लड़की से मिला, प्रश्न किये और उस पर अपना प्रभाव डाला। दो सप्ताह तक उसकी धुन में चक्कर लगाता रहा और उससे विवाह की स्वीकृति तक कराली।

लक्ष्मण को बचपन ही से अवसर था। उसने उसे मार मार कर दबा रखा था। सुदर्शन ने अपने प्रयत्न से अपना काम बना लिया। अगर सुदर्शन के मुँह से लक्ष्मण मुण्डभूषणी की शादी की स्वीकृति की बात न सुने होता तो वह अभी कई वर्षों तक खबर भी नहीं लेता। यह प्रेम नहीं था जो उसे खींच लाया था। यह रीस थी जिसने झूठी आशा दिलाकर उसे झट-पट काम करने के लिये विवश किया। सुदर्शन हृदय का विशाल और उदार था। लक्ष्मण एकदम उसके स्वभाव के विरुद्ध था।

एक महीने के पीछे वह फिर महन्त से मिला। संयोग वश वह ऊपर वाले मन्दिर के उसी कमरे में बैठा हुआ था

जिसमें लक्ष्मण से मिला था और मुण्डभूषणी भी उसी के पास बैठी हुई महिम्न स्तोत्र सुना रही थी। महन्त ने सूचना पाते ही पास बुला लिया और प्रेम के साथ अपने सामने बिठाया।

'तुम आ गये ?'

'हाँ ! मैं आ गया।'

'उसी ख्याल से ?'

'हाँ ! उसी ख्याल से।'

'फिर तुम दोनों आपस में निबट लो। इस विषय में मैं कुछ निर्णय नहीं कर सकता। मैं किसी के व्यवहार में हाथ नहीं डालता।'

'मैं हर प्रकार से तैयार हूँ।'

महन्त ने मुण्डभूषणी की ओर दृष्टि की—'भूषणे। तू क्या कहती है ?'

मुण्डभूषणी झट बोल उठी—'जब आप किसी के प्रायवेट काम में हाथ नहीं डालते तो आपके इस प्रश्न का आशय क्या हुआ ? क्या यह कि आप नहीं बोल सकते ?'

महन्त मुस्कराया क्योंकि लड़की ने सच्ची खरी बात कही थी। यह उसके स्वभाव का विशेष अंग हो गया था।

महन्त ने लक्ष्मण को आँखों से संकेत किया।

उसने मुण्डभूषणी से कहा—'देवी। मैं अपना धन द्रव्य और शरीर तक तुझ पर न्यौछावर करने आया हूं।'

वह मुस्कराई—'तुम को कुछ अपनी खबर है या कि शरीर और धन न्यौछावर करोगे ? क्या शरीर और धन तुम्हारे हैं ?'

लक्ष्मण—'हाँ ! मेरे हैं।'

मुण्डभूषणी—'शरीर तो आकाश, वायु, अग्नि, पानी और मिट्टी का बना हुआ है। यह तत्व तक नहीं कह सकते कि शरीर

उनका है। फिर तुम्हारा कैसे हुआ? आदमी मर जाता है। अगर यह उसका होता तो छोड़ क्यों जाता? क्या कोई भी अपनी चीज को छोड़ सकता है? फिर यह शरीर जलाया जाता है। मिट्टी में मिट्टी, वायु में वायु, आग में आग और पानी में पानी के तत्व मिल जाते हैं। इनका पता नहीं रहता। शरीर मनुष्य का नहीं और न मनुष्य शरीर का है। और यह जब तुम्हारा नहीं तो मुझ पर कैसे न्यौछावर करोगे? जो वस्तु न तुम्हारी है और न तुम उसके हो फिर दे कैसे सकते हो? यही दशा धन द्रव्य की भी है। मैं तो इसे भी किसी का नहीं कहती। देने दिलाने का तो नाम न लो। हाँ, जो तुम्हें कहना है उसे स्पष्ट शब्दों में कहो। तब मैं समझूँ और समझ कर उत्तर दूँ।'

'मैं अपने आपको तुम्हारी सेवा में अर्पण करना चाहता हूं।'

'बहुत ठीक! पहिले तो यह बताओ तुम हो कौन? तब मुझे विश्वास हो। मैं तो तुम्हें जानती तक नहीं हूं। फिर इस सेवा और भेंट के विषय में क्या कहूँ!'

'मैं राजपूत हूं। अच्छे कुल और घराने का हूँ। यहीं का रहने वाला हूँ। तुम्हारा बाप मुझे जानता है। महन्त जी भी परिचित हैं।'

'तुम्हारे राजपूत होने का सबूत क्या है?'

'जिससे चाहो पूछ सकती हो।'

'मैं और किसी से क्यों पूछने जाऊँ? तुम्हीं से पूछती हूं। क्या तुम आप अपने राजपूत होने का सबूत नहीं दे सकते?'

'दे सकता हूं।'

'तो फिर दो और मुझे निश्चय करा दो।

लक्ष्मण बड़ी उलझन में पड़ गया। अपने मित्रों में तो

वह बड़ा ही सभा चतुर समझा जाता था परन्तु यहाँ एक लड़की के सामने ठहरना कठिन हो गया।

'मैं राजपूत हूं। इसे मैं जानता हूं और सब जानते हैं।'

'राजपूत तुम कहते किसे हो? यह तो शब्द ही शब्द है।'

'राजपूत क्षत्री होते हैं। यह हिन्दुओं की एक ऊँची जाति है। किसी समय इसी जाति के लोग भारतवर्ष के राजे महाराजे हुआ करते थे। अब भी इस जाति में बहुत से राजे हैं।'

'यह सब सच है। तुम असली राजपूत हो या नकली और फर्जी?'

'मैं असली राजपूत हूं फर्जी नहीं हूं।'

'मैं तो फर्जी ही मान रही हूं।'

'कैसे!'

'इस समय तुम अपने आपको राजपूत और उच्च श्रेणी का हिन्दू मान रहे हो। कल को तुम मुसलमान या ईसाई हो जाओ तो न हिन्दू रहे न राजपूज। इसलिये राजपूत कल्पित पदार्थ है, फरजी है असली नहीं है। असली होता तो उसकी असलियत में अन्तर नहीं आता।'

'लक्ष्मण मन में बड़ा लज्जित हुआ। उस पर सौ घड़े पानी के पड़ गये। वह इस भिकारिनी के पीछे पड़ा क्यों! क्या उसने पहिली बार उसे निराश नहीं कर दिया था। विचित्र लड़की है। वह आया था उसके साथ विवाह करने और इसने बेतुकी बातों के झमेले में डाल दिया। इससे उत्तर तो कुछ नहीं बना, चकित हो रहा और मौन वृत्ति धारण करनी पड़ी।

मुण्डभूषणी ने फिर आप ही कहा—'तुम कहते हो मैं अपने आप को दूँगा। क्या ऐसा नहीं कहा था?'

'हा! मैंने कहा था और मैं अपनी बात पर आरूढ़ हूं।'

'दृढ़ तो तुम उस समय होते जो अपने आप के होते। मुझे इसमें भी सन्देह है।'

'तो तुम्हारी दृष्टि में मैं नहीं हूँ या नहीं के बराबर हूं अथवा मेरा कोई अस्तित्व नहीं है।'

'तुम बड़े उतावले मालुम पड़ते हो। अजी! मैंने यह तो नहीं कहा कि तुम नहीं हो। मैं केवल तुम्हारी बात को दुहरा रही हूं। तुमने कहा मैं अपने आपको दूँगा। मैंने कहा तुम अपने आपके नहीं हो।'

'तुम्हारी बातचीत करने का ढंग भी निराला है। मैं अपने आपका नहीं हूं। इससे क्या समझूँ! क्या बूझूँ! तुमने मुझे बड़े चक्कर में डाल रक्खा है।'

'बहुत अच्छा। मैं पूछती चलूँ तुम जबाब देते चलो। उस वक्त तुम आपही समझ जाओगे।'

'पूछो!'

'तुम अपने पिता के बेटे हो या नहीं हो?'

लक्ष्मण को यह बात बहुत बुरी लगी। किसी को ऐसा कहना कि अपने बाप का बेटा नहीं है उसे गाली देना और मान हानि करना है। क्रोधित होने पर भी उसने अपने आपको संभाल कर उत्तर दिया:—

'मैं अपने बापका असली और सच्चा बेटा हूँ।'

'धन्य हो! इतना ही मैं जानना चाहती थी।'

'भला! यह तो फकीर की लड़की ने मान लिया। आगे चलकर और मान लेगी। उसकी ढ़ारस बँधी। आशा की सूखी टहनी में हरियाली आ गई। मुण्डभूषणी ने फिर प्रश्न किया:— 'तुम अपनी बहिन के भाई हो या नहीं?'

'हां! भाई हूं।'

'तुम राजपूत हो। राजपूत तुम्हें अपना प्यारा सम्बन्धी

मानते हैं या नहीं ?'

'मानते हैं। और राजपूतों में मेरी बड़ी प्रतिष्ठा है।'

'धन्य हो ! तुम अपनी कम्पनी के एजन्ट हो या नहीं ?'

'हूं। नहीं क्यों हूं ! कम्पनी मुझे २०० रुपये तनख्वाह देती है। यों ही तो नहीं देती !'

'इतना और कह दो जब तुम अपने बाप के बेटे हो, बहिन के भाई और राजपूतों के प्यारे सम्बन्धी हो और साथ ही कम्पनी के एजन्ट भी हो तो यह सब के सब तुम्हारे दावीदार हुये। तुम पर सबको हक हो गया। तुम उनके बीच बट बटा गये। पूरे न रहे अधूरे ठहरे। टुकड़े टुकड़े हो गये। तुम्हारा कोई हिस्सा किसी का हुआ और कोई किसी का हुआ। फिर ऐसी दशा में तुम अपने आपके कहां रहे जो मुझे अपने आपको देने आये हो। मैं केवल तुमसे यही पूछती हूँ।'

वह इस युक्ति संयुक्त अच्छी बातों को सुन कर संशय में आ गया। थोड़ी देर तक चुप रहा, सोचने और विचारने के पीछे यह समझा कि मुण्डभूषणी चाहती है कि सब के होकर न रहो, अकेले उसी के होकर रहो। इस विचार से एक तरह पर ढारस बँधी और उसने उस बार असाधारण साहस से कहा:—

'जब यह शर्त है कि मैं किसी का होकर न रहूँ केवल तुम्हारा ही होकर रहूँ तो मुझे यह भी स्वीकार है। मैं सबको और सब कुछ छोड़कर तुम्हारा ही हो जाऊँगा तब तो तुम मुझको स्वीकार करोगी ?'

'क्यों नहीं ? इसी से तो मैं पहिले अपनी संतुष्टि करना चाहती हूँ। तुम जानते ही हो कि स्त्री कितनी स्वार्थी होती है। वह चाहती है कि उसका पति अकेला उसी का होकर रहे।

दूसरे का न हो और कोई दूसरा उसका ग्राहक न बने।'

यह मन में बहुत ही प्रसन्न हुआ। समझ बैठा कि वह उसे स्वीकार कर लेगी। इसलिये साहस करके कहा:—

'मुझे यह हृदय से स्वीकार है। मैं अकेला तुम्हारा ही होकर रहूंगा और कोई मेरा दावीदार न होगा।'

'मैं राजी हूँ। अब मेरी इतनी और संतुष्टि कर दो कि तुम हो क्या ?'

'क्या मैंने नहीं कहा कि मैं राजपूत हूँ ?'

'यह तो तुमने कहा और मैंने सुन भी लिया मगर अभी तुमने यह विश्वास दिलाया था कि सब कुछ छोड़कर मेरे ही हो जाओगे और फिर राजपूत बनने लगे।'

'मैं इस राजपूत पने को तुम्हारी खातिर छोड़ दूँगा।'

'यह राजपूतपना कोई असली चीज भी हो जिसे तुम छोड़ दोगे। मैं तो इसे पहिले से ही कल्पित, मिथ्या और असत्य समझ रही हूं। इसे छोड़ो या न छोड़ो, यह मेरा प्रश्न नहीं है। प्रश्न तो कुछ और ही है।'

'वह क्या प्रश्न है ?'

'तुम आप क्या हो ?'

'प्रश्न को थोड़ा स्पष्ट कर दो तब मैं उत्तर दूँ। तुम गोल-मोल बातें कर रही हो। मैं उत्तर भी दूँ तो क्या दूँ !'

'हर एक बात पर कहती हो मुझ से तू क्या है ?
तुम्हीं ही बताओ यह अन्दाजे गुफ्तगू क्या है ?'

मुण्डभूषणी हँसी। महन्त जी चुपचाप बैठे रहे। केवल उनके प्रश्नोत्तर को सुना किये। लड़की ने फिर प्रश्न किया:—

'यह बताओ कि तुम क्या हो ? शरीर हो ? मन हो ? बुद्धि हो या और कोई वस्तु हो ? अगर शरीर हो तो मैं पहिले

ही कह चुकी हूँ कि यह मिट्टी और पानी से बना है। और यह आज है कल न रहेगा। इसे लेकर मैं क्या करूँ। यदि यह कहते हो कि तुम मन हो तो मन में संशय भ्रम, हिचकिचाहट, भय और लज्जा सभी रहते हैं। और वह भी कभी हैं कभी नहीं है। जब मनुष्य का मन दूसरे कोठे में चला जाता है तो वह अमन और उन्मत हो जाता है। मुझे इसकी भी आवश्यकता नहीं। अगर तुम बुद्धि हो तो यह बुद्धि पेचदार खटपट कराने वाली और 'मैं' 'तू' का गोरख धन्दा है। यह भी नाशवान है। जब बुद्धि नहीं रहती तो मनुष्य अबुद्धि और अज्ञानी कहलाता है। यह भी मेरे काम की वस्तु नहीं। तुम अब सोच कर बताओ कि क्या हो? तब मैं कहूँ कि तुम्हें स्वीकार करती हूं या अस्वीकार करती हूँ। जब तक तुम स्पष्ट रीति से निर्णय करके न बताओगे कि तुम क्या हो तब तक मुझ से क्या आशा रखते हो?

लक्ष्मण के होश के तोते उड़े। वह बेचारा कहता भी तो क्या कहता! दंग रह गया। चुप! होठों पर मुहर लग गई। थोड़ी देर सर झुकाये हुये बैठा रहा। फिर महन्त की ओर दृष्टि की।

महन्त देवता स्वभाव मनुष्य था। उसे लक्ष्मण पर दया आई। उसने उसे प्रेम और करुणा के वशीभूत होकर समझाया:—'भाई लक्ष्मण! तुमने इसे देख लिया, सुन लिया, समझ लिया, बातें करली। इसे न स्वीकार है न अस्वीकार है। केवल बात का बतँगड़ा हो रहा है। इस प्रश्नोत्तर का कोई परिणाम नहीं और दोनों में से किसी का लाभ नहीं होगा। यों ही समय नष्ट हो रहा है।'

लक्ष्मण की आँखें क्रोध से आग भभूका बन गईं। उसने

कहा - 'मेरा अपमान और अनादर करने के लिये बुलाया गया था। कभी न कभी किसी को इसका फल भोगना पड़ेगा।'

यह कह कर वह उठा और बिना नमस्कार किये हुये वहां से चला आया।

मुण्डभूषणी हँसती रही। महन्त चुप था। वह समझ गया कि लक्ष्मण बुरा आदमी है और बुरे से पाला पड़ने वाला है। वह बुरी तरह बदला लेगा और बदला लेने से न चूकेगा लेकिन उसने मुण्डभूषणी से कुछ न कहा। लड़की उसके हार्दिक भाव को न समझ सकी क्योंकि उसे संसार के व्यवहार का ज्ञान न था।

॥ दूसरा भाग समाप्त ॥

नाविल

# तीसरा भाग

## पहिला अध्याय

### छेड़ छाड़

लक्ष्मण सुदर्शन से मिला।

सुदर्शन ने पूछा—'कहो! क्या हुआ? इंटहरा गये थे क्या कर आये?'

लक्ष्मण ने उत्तर दिया—'दुर्भाग्य ने काम नहीं होने दिया। मुझे यह बात स्वीकार है कि मैं परीक्षा में पूरा नहीं उतरा।'

'क्या इन्कार किया गया?'

'स्पष्ट शब्दों में नहीं। बात परदे में रखकर की गई।'

'अब क्या राय देते हो?'

'जो तुम्हारे जी में आये करो। तुम्हें अधिकार है।'

'इसका प्रमाण नहीं। मैं ऐसे जबाब की आशा तुमसे नहीं रखता। तुम मेरे दोस्त हो। राय के समय राय दो, खेल के समय खेल हो और काम के समय काम की बात हो।'

'पूछो, जो कुछ उचित समझूँगा उत्तर दूँगा।'

'मैं इस परीक्षा के लिये अपने आप को तैयार करूँ या नहीं?'

'नहीं ! मेरी राय नहीं है।'

'क्यों ?'

'बुरे लोग हैं। अकेले रहते रहते उनका दिमाग बिगड़ गया है। यह लोग मिलने जुलने के योग्य नहीं हैं।'

'सच कहते हो। स्वभाव भी विचित्र वस्तु है।'

'मैंने कई ढंग से बातचीत की मगर राह पर नहीं आये।'

'कौन ? महन्त या मुण्डभूषणी ?'

'दोनों ही, बड़े मियाँ तो बड़े मियाँ छोटी बू सुबहान अल्लाह ! नीम का वृक्ष फिर भी अच्छा ! उस पर चढ़ा हुआ करेला बहुत बुरा !'

'तुम मुण्डभूषणी को बुरी समझते हो ?'

'बुरी तो वह है नहीं, नहीं तो मैं उसके पीछे क्यों पड़ता ! हाँ बातूनी और दिमाग चाटने वाली है। सीधे मुँह से बात नहीं करती। जो कहेगी भी वह भी गोल मोल, न जिसका सर न जिसका पैर।'

'मुझसे भी उससे बातचीत हुई थी मगर मैं तुम्हारी तरह जल्दी कोई नतीजा नहीं निकाल सका।'

'क्या हर्ज है। अब निकालोगे, 'हाथ कंगन को आरसी क्या है ?' किसी ने पूछा—'नाई ! मेरे सर में कितने बाल हैं ?' उसने कहा—'अभी सर मूँड देता हूं आप गिन लेना।'

'भाई ! मालुम होता है तुम्हारी बुरी तरह से हजामत की गई है ?'

'बुरी से भी बुरी।'

'तब ही ऐसी बातें कहते हो। इनसे खट्टे अंगूर वाली बात टपकती है।'

'सच है। ऐसा ही है। मेरी दाल नहीं गली और मैं समझता हूँ वहां किसी की भी नहीं गलेगी।'

'ऐसा कहना असाधारण साहस का काम है।'

'कह देखा, कर देखा, सुन देखा। अब और क्या चाहते हो ?'

'तुम तो हो आये। सर मुँडाते ही ओले पड़े। अब मैं जाऊँ या न जाऊँ ?'

'न जाना ही अच्छा है। ऐसा न हो ओले की जगह पत्थर बरसें।'

'फिर डर किस बात का है ? बरसते हैं तो बरसा करें। साहस भी तो कोई वस्तु है।'

मुण्डभूषणी से काम पड़ा है। मूँड (सर) घुटाकर पत्थर बरसाये जायेंगे।'

'देख लिया जायेगा।'

'भाई ! सोच समझ कर काम करना। कहीं मेरी तरह तुम्हारी भी दुर्गति न हो, नहीं तो अन्त में लज्जित होना पड़ेगा।'

'मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। मैं अपना काम कर लूँगा। सीधी उँगली से घी नहीं निकलता। टेढ़ी करनी पड़ती है। मैं निबट लूँगा। अब तुम इतना और कहदो कि तुमको बुरा तो न लगेगा। मैं भी परीक्षा देना चाहता हूं।'

'मुझे क्यों बुरा लगने लगा ! वहां लेने के देने पड़ते हैं। यह तो अच्छी तरह समझ चुका हूँ। तुम्हारे पास देने को बहुत है। जाओ, दे दो और देखो उसके बदले में क्या मिलता है ! ढाक के तीन पात ! यह मैं जानता हूँ और देख भी चुका हूँ ?'

'और जिसे लेने देने से काम ही न हो ?'

'वह क्यों आपत्ति में पड़ने लगा ! बैठे बिठाये सर पर बला लेना कौन सी बुद्धिमानी की बात है !'

'बातें क्या हुई वह तो तुम कहते नहीं। बेपर की उड़ रहे हो।'

'बात बात कुछ नहीं! मैं ने मुण्डभूषणी के लिये आप जाकर छेड़ छाड़ की। उसने गोल मोल शब्दों में अस्वीकार कर दिया। इसके सिवा और कुछ नहीं हुआ।'

'धन्य हो! बात के बड़े धनी हो। यह भी कोई बात हुई! कोई किसी की लड़की से कहे कि तू मेरे साथ विवाह करले। वह इन्कार न करेगी तो करेगी क्या! मान न मान मैं तेरा महमान! ऐसी बातों से तो लज्जित होना ही पड़ता है।'

लक्ष्मण ने अपने मन में सोचा—'बात कुछ इसी तरह की हुई है। यह लड़का सच कह रहा है। क्या यह मुझ से बुद्धिमान है! मैंने किया तो ऐसा ही तब ही तो उसने जान बूझकर मुझे लज्जित किया। अच्छा! अब तो जो होना था हो चुका। यदि मैं लक्ष्मण हूं तो लोहे के चने चबवा दूँगा। बच्चा को छटी का दूध याद आ जायेगा। जन्म जन्म को रोयेंगे और अपनी करनी को याद करेंगे।'

सुदर्शन ने कहा- 'दिल ही दिल में क्या सोच रहे हो? मुँह खोलो बातचीत करो। मैदान तो तुम्हारे हाथ से निकल गया। अब पछताकर क्या करोगे?'

लक्ष्मण हँसा—'बात तो सच्ची कहते हो। मैं यही सोच रहा था।'

सुदर्शन—'अब उसे भूल जाओ। यह समझ लो सुदर्शन तुम्हारा दोस्त है। वह जाकर बदला लेगा। ऐसा मारूँ कि चारों खाने चित्त हो जाय तब तो बात है! देखो चलकर ऐसा चंग पर चढ़ाता हूं कि महन्त और मुण्डभूषणी दोनों को पता लग जायगा कि किसी मर्द से पाला पड़ा है। अब तो

आग में कूदने की ठान ली। समय आयेगा जब तुमसे मिल-कर कहूँगा:—

कूदा कोई यों घर में तेरे धम से न होगा।
जो काम किया हमने वह रुस्तम से न होगा॥'

लक्ष्मण—'क्या तुम अपने आपको मुझसे चतुर और बुद्धिमान समझते हो?'

सुदर्शन—'नहीं! लेकिन तुम्हारी बात तुम्हारे साथ। मेरी बात मेरे साथ। बुद्धि किसी विशेष मनुष्य के हिस्से में तो नहीं आई है। कभी बच्चे ऐसा काम कर डालते हैं जो बूढ़ों से भी नहीं होता। अपनी अपनी युक्ति और अपना अपना दाव पेच!'

'इस समय तो दून की ले रहे हो?'

'और क्या! बाजी मार ली। तीर निशाने पर बैठ गया। शिकार हाथ आ गया। अब केवल मैदान में आन की देर है।'

'मैं भी तो सुनूं! किस तरह हाथ मारोगे। कैसी हाथ की सफाई दिखाओगे?'

यह अभी से कहने की बातें नहीं हैं:—

कहैं कबीर छओ रस। जहां जस तहाँ तस॥

बात समयानुसार सूझती है। अभी से क्या कहूँ! मैंने सोचा कुछ और वहां हो गया कुछ!

'बात तो ठौर ठिकाने की कर रहे हो। मैंने ऐसा नहीं समझा था।'

'तो अब समझो! तुम्हें रोकता कौन है!'

'अब क्या राय है?'

'ठहरा जाना, मन्दिर पर छापा मारना, उसकी सुन्दर मूर्ति को उड़ा लाना। इसके अतिरिक्त और क्या राय होगी?'

'कब जाओगे?'

'यों न कहो। इस तरह पूछो—'कब चलोगे ? तब मैं उत्तर दूँगा।'

'क्या मेरा साथ रहना आवश्यक है ?'

'क्यों नहीं ! क्या तुम भूल गये ! इसी दिन के लिये तुम मे वचन ले लिया था। जब दोस्त हो तो परीक्षा के समय मित्रता का दम क्यों नहीं भरते ! मैंने तो अपना धर्म निवाह दिया। तुमको सरपट दौड़ने के लिये बेलगाम छोड़ दिया। अब तुम्हारी बारी है। दुनिया को दिखा दो कि ऐसे अवसर पर भी सच्चे दोस्त अपनी दोस्ती का दम भरते रहते हैं।'

'बहुत अच्छा ! चलूँगा। मन्दिर में पहुंचा कर चला आऊँगा। यह मैं पहले ही कह चुका हूँ।'

'मुझे याद है। यही सही ! भागे भूत की लंगोटी ही सही ! यह भी कम नहीं है।'

'फिर कब चलने का विचार है ?'

'इसका अभी कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता। मैं बिना सोचे समझे कुछ कहना नहीं चाहता। यह सबक मैंने मुण्ड-भूषणी से पढ़ा है। मैं उसे भूला नहीं। जल्दी का काम शैतान का होता है।'

लक्ष्मण ने अपने मन में सोचा—'बच्चा अभी तो बहुत दून की ले रहे हैं। यह जानते ही नहीं कि घड़ी दो में मुरलिया बाजेगी। मेरे मुँह का शिकार छीन कर खाना और पचा लेना खेल नहीं है।'

लेकिन सुदर्शन से उसने कुछ नहीं कहा।

# दूसरा अध्याय

## मन्दिर में प्रवेश

सुदर्शन ने कई दिन सोचने विचारने में लगा दिये।

लक्ष्मण से कहा—'अब चलो। मन्दिर के दर्शन की सुदर्शन को लालसा है। तुम पण्डे नहीं हो। इस समय पण्डे के दलाल बन जाओ। मैं यात्री हूं। ले चलो, मुझे असली पण्डे के पास पहुँचा दो।'

लक्ष्मण—'असली पण्डा कौन है?'

सुदर्शन—'मुण्डभूषणी।'

लक्ष्मण—'और पुजारी?'

सुदर्शन—'महन्त।'

लक्ष्मण—'किस मूर्ति का जाकर दर्शन करोगे? किस की पूजा होगी?'

सुदर्शन—'ॐ तत् सत्! वह अकथनीय है। मन और वाणी की उस तक पहुँच नहीं है। मैं अगर कहूं भी तो क्या कहूँ! यह प्रश्न तुमने बहुत पहले कर दिया। कौन जाने मैं उसका उत्तर भी कभी दे सकूँगा या नहीं।'

सुदर्शन ने एक तरह पर अपना हार्दिक भाव प्रकट कर दिया लेकिन लक्ष्मण दिल का सियाह और गन्दा था, उसे समझ न सका।

दूसरे दिन सामान बाँधा गया। सेकन्ड क्लास का टिकट लिया गया। ड क गाड़ी मेजा रोड पर नहीं ठहरती थी। एक्सप्रैस ट्रेन पर दोनों दोस्त चढ़े। दो घण्टे में मेजा रोड पर पहुंच गये।

वहाँ एक नाव किराये पर ली, उसमें सवार हुये और

मल्लाह ने मन्दिर के सामने ले जाकर उतार दिया। कुली किया और सामान लिये हुए मन्दिर में पहुँचे। संयोग की बात मुण्डभूषणी टहल रही थी। इस पर दृष्टि पड़ी। मुसकराई। एक साधू आया, पूछा - 'कौन हो ?' उत्तर मिला—'यात्री हैं। दर्शन के लिये आये हैं।' उसने एक कोठरी खोल दी। इसने उसमें अपना सामान रक्खा।

यह सब दृश्य लक्ष्मण ने देखे। उसने लड़की की मुसकराहट देखी। सुदर्शन ने उसकी ओर ध्यान तक नहीं दिया। साधू की कोठरी में सामान रखने तक की सारी घटनायें उसकी दृष्टि में पड़ीं। फिर यह दबे पाँ चलता बना। सुदर्शन इसके लिये पहिले ही से तैयार था। रोक थाम नहीं की। मन्दिर वालों को पता तक नहीं लगा कि यह उसका दोस्त है। उन्होंने केवल इतना ही समझा कि वह यहां का रहने वाला है, आया होगा और अपने घर चला गया होगा। इससे अधिक सोचने की उन्हें आवश्कता भी नहीं थी।

सुदर्शन कोठरी में बिस्तर जमाकर बैठ गया। थोड़ी देर पीछे उसी पहले वाले साधू ने आकर खबर दी - 'महन्त जी याद कर रहे हैं।'

वह उठा, फूल, फल, कम्बल, अंगोछा, धोती लोटा मिठाई की टोकरी और कुछ नकद निकाला। यह सब सामान वह शहर से साथ लाया था। सब सामान अपने हाथ में लेकर नंगे पाँव महन्त के पास जाने के लिये उसी के साथ हो लिया। महन्त मन्दिर के चबूतरे पर बैठा हुआ था। यह पहुँचा। भेंट पूजा का सामान सामने रखकर साष्टांग हुआ, प्रणाम किया। महन्त ने इसे गहिरी दृष्टि से देखा। बैठने की आज्ञा दी। 'कौन हो ? कहाँ से आये ? क्यों आये हो ?'

'इलाहाबाद का रहने वाला हूं। राजपूत हूं। दर्शन की इच्छा यहां खींच लाई है।'

'नाम ?'

'सुदर्शन।'

'सुदर्शन नाम और दर्शन की इच्छा! नाम रूप अथवा नाम और इच्छा का सम्बन्ध बहुत फबता हुआ है। यथा नाम तथा गुणः, यथा नाम तथा रूपः अथवा यथा नाम तथा इच्छा।'

यह चुप रहा। सभ्यता का विशेष ध्यान था।

'दर्शन ही की इच्छा है या कुछ और भी है ?'

'दर्शन में सब कुछ आ गया:—

दरस परस और मंजन पाना। हरहिं पाप कहें वेद पुराना॥

अथवा—दरस परस और मंजन पाना।
लहहिं चार पद चतुर सुजाना॥

अथवा—दरस परस और मंजन पाना।
तीरथ लाभ रहस्य पुराना॥

अथवा—दरस परस और मंजन पाना।
देहि सद्य फल सो बिधि नाना॥

अथवा—दरस परस और मंजन पाना।
अर्थ, धर्म, काम, निर्वाना॥

अथवा—तीरथ गये तो एक फल, संत मिले फल चार।
सतगुरु मिले अनेक फल, कहैं कबीर विचार॥

महन्त जी खिलखिला कर हँस पड़े—'तुम बड़े समझदार आदमी मालुम होते हो। ऐसा विवेकी पुरुष और इस युक्ति के साथ बातचीत करने वाला अब तक मेरी दृष्टि में नहीं आया था।'

समझ तो दर्शन के आधीन है। दर्शन होने से आप ही समझ आ जाती है। जब वृत्ति ब्रह्माकार होती है तब ब्रह्म का

दर्शन प्राप्त होता है। इसी का नाम तदात्म सम्बन्ध है। जब तक कि वृत्ति ब्रह्म को आच्छादित नहीं करती तब तक ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं होता। केवल मुख से 'अहं ब्रह्म' कहना अथवा महावाक्य का उच्चारण करते रहना सर्वथा मिथ्या और निरर्थक है।'

महन्त—'लो दर्शन तो हो गया। तुमने मुझे देख लिया। इच्छा पूरी हुई या अभी कुछ और कसर है?'

सुदर्शन—निस्सन्देह दर्शन तो हो गया। आपका पवित्र आकार शरीर के रूप में दृष्टि के सामने आ गया। पन्थाई पहिली मंजिल पर पहुँच गया। अभी तीन मंजिल और बाकी हैं। वह आपकी कृपा से आप ही आप समय पर पूरी हो रहेंगी।'

महन्त मुस्कराया—'वह क्या हैं?'

सुदर्शन ने उत्तर दिया—

'दरस परस और मंजन पाना। हरहिं पाप कहें वेद पुराना।'

महन्त—'क्या इसकी व्याख्या कर सकते हो?'

सुदर्शन—'गुरू का स्वरूप गंगा की पवित्र धार है। दूर से वह हलकोरे और झकोले लेते हुये दिखायी तो दे गयी अब उसे हाथ लगा कर छूना, उसमें बैठकर नहाने का आनन्द लेना और उसका शान्ति देने वाला जल पीना बाकी है। इससे तीन प्रकार के ताप आधिदैविक, आधिभौतिक और अध्यात्मिक जो पाप से उत्पन्न होते हैं नाश को प्राप्त होंगे।'

महन्त—'तो तुमको अपने पाप का विश्वास है?'

सुदर्शन—'इसी पाप की बलिहारी है। इसने दुख दिया, सताया। इससे छुटकारा पाने की इच्छा हुई और हृदय बिना रोक थाम के आप के चरणों की ओर झुका—

सुख देवैं दुख को हरैं, दूर करैं अपराध।

कहैं कबीर वह कब मिलैं, परम सनेही साध ॥
गुरु गंगा के रूप हैं, तहां पर छालूँ अंग।
मन उपजे सुख शान्ती, कबहुँ न हो चित भंग ॥
दरस मिला तो सब मिला, प्रेम भक्त सद् ज्ञान।
दर्शन का फल समझ ले, जीते जी निर्वान ॥
सत पुरुष की आरसी, साधू की है देह।
लखा जो चाहे अलख को, इन ही में लखि लेह ॥
नहिं सीतल है चन्द्रमा, हिम नहिं सीतल होय।
कबीर सीतल संत जन, परम सनेही सोय ॥

महन्त ने कहा—'क्या अच्छी समझ पाई है! धन्य है यह समझ बूझ। यह विवेक विचार! यह प्रेम की भक्ति! यह इष्ट पद का ज्ञान! वाह वाह! क्या कहना है।'

सुदर्शन चुप हो रहा।

महन्त ने कहा—'बेटे! तुम बड़े भाग्यवान हो। बहुत अच्छा किया आ गये। तुमको देखकर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। तुमने अब तक चार मंजिलों का पूरा ब्यौरा नहीं सुनाया। मैं किसी समय तुमसे सुनूँगा और सुनना चाहता हूँ लेकिन ठहरो, तनिक संतोष करो।'

महन्त ने मुण्डभूषणी का नाम लेकर पुकारा। वह तो सदैव महन्त के साथ बातचीत करने की इच्छुक रहती थी और आज तो वह ताक में लगी बैठी थी। उससे इन दोनों की बातचीतों को अच्छी तरह सुन लिया था। नाम लेते ही आ गई और नमस्कार किया। इशारा पाकर बैठ गई।

महन्त बोला—'मुण्डभूषणे। आज बहुत दिनों पीछे एक महा उत्तम अधिकारी आया है।'

यह चुप रही। न हाँ कहा, न नहीं, होंठ तक नहीं हिलाये।

महन्त ने सुदर्शन की ओर दृष्टि की। 'हां बेटे! अब तुम

फिर चौपाई का अर्थ करो। मुण्डभूषणी भी अधिकारी है। यह भी सुन लेगी।'

सुदर्शन ने मुँह खोला—'गुरु का अखंड मंडलाकार चराचर में व्यापक रूप गंगा की निर्मल धारा है जिसकी लहरें आश्चर्य जनक ढंग पर आकाश मंडल से बातें करती हुई पृथ्वी, अंतरिक्ष और दिव् की कड़ियों की मिलाती रहती हैं। इसके देखने, छूने, नहाने और पीने की वेद पुराण शिक्षा देते हैं और उनसे त्रिलोकी के त्रिगुणात्मक पापों का नाश होता है। यह इस चौपाई का साधारण अर्थ है। आन्तरिक अर्थ कुछ और भी है। और वह (१) सालोक्य (२) सामीप (३) सारूप और (४) सायुज्य है।

गुरु के स्थान में बसना और उसका दर्शन करना सालोक्य है जिसे हम गुरु के मंडल में प्रवेश करना कहते हैं। गुरु का समीपवर्ती होना सामीप अवस्था है। इसे हम सत्संग का लाभ बोलते हैं। गुरु का बचन सुनना और सुनकर उसी के अनुसार अपने जीवन की गढ़त करना सारूप दशा है। इसे हम रहनी कहते हैं और गुरु का रंग ढंग स्वीकार करके उसके साथ एकत्व भाव में लय हो रहना सायुज्य है। इसे जीवन मुक्त, जीते जी का निर्वाण और ध्रुवपद की प्राप्ति बोलते हैं।'

'यह चार आत्मिक अवस्थायें हैं जिनका वर्णन रामायण के साधारण शब्दों में किया है।जसमें सर्व साधारण की समझ में आ सके क्योंकि बाहर मुखी वृत्ति वाले अन्तर्मुखी अवस्थाओं का ज्ञान नहीं रखते:—

दरस परस और मंजन पाना। हरहिं पाप कहैं वेद पुराना॥
दरस किया तो भल किया, देखा गुरु का रूप।
कबीर गुरु के दरस से, पड़ै न भव के कूप॥

परस किया तो भल किया, सत सेवा व्यवहार।
कबीर गुरु पद परस के, सहजहिं उतरे पार॥
मंजन किया तो भल किया, न्हाया नित सत्संग।
कबीर संग प्रताप से, व्यापै गुरु का रंग॥
पान किया तो भल किया, धार लिया गुरु रंग।
जगत भाव को तज दिया, ज्यों कांचुली भुजंग॥
तीन अवस्था तीन गुण, तिरलोकी व्यवहार।
चौथे पद को जो गहै, वही मूल है सार॥
कथनी बदनी त्याग कर, रहनी से चित्त लाय।
नर को नीर पियाय बिन, कबहुं प्यास न जाय॥

महन्त ने पूछा—बेटे! तूने गुरु का शब्द क्यों कहा? सत, ईश, ब्रह्म इत्यादि परिभाषा से क्यों काम नहीं रक्खा?'

सुदर्शन ने सत्कार पूर्वक उत्तर दिया—'सत के अनेक नाम और अनेक रूप है। कोई उसे कुछ कहकर स्मरण करता है कोई कुछ। ऋगवेद की श्रुति है—'एकोसत् विप्राः बहुधा वदन्ति' अर्थ यह है—सत तो एक ही है और ज्ञानी उसे बहुत नाम दिया करते हैं।' एक कारण तो यह है। दूसरा कारण यह है कि चराचर जगत् सब उस सत् के प्रकाश का बहुरूप है। वह जड़ और चेतन्य दोनों में व्याप्त हो रहा है। तीसरा कारण यह है कि जब चेतन्य मूर्त्ति अपना स्वयं प्रकाश कर रही है तो जड़ की ओर क्यों दृष्टि की जाय। क्यों न गुरु की चेतन्य मूर्त्ति से काम लिया जाये! उसे चाहे सत कहो, ईश कहो, ब्रह्म कहो अथवा गुरु कहो। बात तो एक ही है। कहने सुनने का हेर फेर है। चौथा कारण यह है कि सामान्य चेतन्य की उपासना से इतना लाभ नहीं होता जितना लाभ कि विशेष [illegible] है। अग्नि जल थल सब में व्याप्त है परन्तु

जब तक उसका मथन नहीं होता और वह विशेष रूप में प्रगट नहीं होती, तब तक न व्यवहार बनता है न परमार्थ। गुरु चेतन्य विशेष की मूर्त्ति है। जिसने उससे काम नहीं लिया उसका सारा श्रम निरर्थक गया।

जा खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि देवा।
कहें कबीर सुन साधवा, कर सत गुरु सेवा॥
साध कहे गुरु पूजिये, गुरु कहैं साध को पूज।
इन दोनों व्यवहार से, भई अगम की सूझ॥
वस्तु कहीं ढूंढे कहीं, केहि विधि आवे हाथ।
कहें कबीर तब पाइये, जब भेदी लीजे साथ॥
भेदी लिया साथ कर, दीनी वस्तु लखाय।
कोटि जन्म का पंथ था, पल में पहुँचा जाय॥
अन्तर दृष्टि खोल कर, सन्मुख ले दीदार।
बाल सनेही साइयाँ, आदि अन्त का पार॥
यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलें, तौ भी सस्ता जान॥

महन्त—'वाह वाह। तूने क्या अच्छा समझा है। इससे अधिक कोई क्या समझे समझायेगा!'

सुदर्शन—'लेकिन यह समझ पर्य्याप्त नहीं है। किसी और बात की भी कमी है।'

महन्त—'मैं जानता हूँ। अब तू जाकर आराम कर या मन्दिर की देख भाल करके अपने चित्त को प्रसन्न कर। मुण्ड-भूषणे! अगर तुझे कष्ट न हो तो इस उच्च संस्कार वाले अधिकारी के साथ जाकर मन्दिर की सैर करा दे। गंगा का तट शोभायमान है। यह युवक विचित्र पुरुष है। इसकी संगत

से तुझ को बहुत लाभ होगा। ऐसे पुरुष का दर्शन नित्य नहीं मिलता।'

# तीसरा अध्याय

## मन्दिर की सैर

सुदर्शन और मुण्डभूषणी का साथ हुआ। यह पहिला मौका था कि महन्त ने उसे किसी युवक के साथ बातचीत करने की इजाजत दी थी। लड़की और महन्त दोनों ही चौकन्ने रहा करते थे। सुदर्शन से पहिले मिलाप में बातचीत करने का अवसर अचानक हो गया था।

दोनों साथ साथ मन्दिर के आँगन में टहलने लगे। चारों ओर घूम आये। उसका दरवाजा बंद था। मुण्डभूषणी ने उसकी बाहिरी दीवार को एक जगह अगूठे से दबा दिया। दरवाजा आप ही आप खुल गया। चारों ओर से बन्द, न खिड़की न रोशनदान! शिवालों के गुम्बददार मन्दिर बहुधा ऐसे ही अँधेरे बनाये जाते हैं। इस का क्या कारण है बनाने वाले ही जानें या वह जाने जिसने पहले पहिल शिवाला बनवाया होगा। सूर्य्य के प्रकाश को अगर आना हो तो दरवाजे ही की ओर से आये। इसका मुँह बहुधा पूर्व की ओर बनाया गया है। यह भी एक ऐसी अनौखी बात है जो सब जगह देखने में आती है। शिवालों के दरवाजे कहीं कहीं उत्तर दक्षिण और पश्चिम की ओर हैं और होंगे। उनका दरवाजा अधिकतर पूर्व की ही ओर बनाया जाता है।

अभी दिन था फिर भी उसके अन्दर घोर अंधेरा था। देखने से मालुम हुआ कि मन्दिर के बीचों बीच में शिव लिंग अर्घ में स्थापित है। उस पर तिगड्डी लकड़ी पर पानी का घड़ा

रक्खा है और उस जल घड़े से लिंग पर बून्द बून्द पानी टपका करता है। इस अर्घ की परिक्रमा कर लेने के पीछे सुदर्शन सिंह ने कहा—'सांस रुकती है बाहर चलो।'

और वह बाहर निकल आये। लड़की ने पट लगा दिये। वह आप ही आप बन्द हो गये। आँगन के एक कौने में जहाँ कोई साधू नहीं था और वहां कोई आ जा नहीं रहा था बैठ गये।

सुदर्शन ने कहा—'क्या तुम जानती हो मैंने कितनी बार चक्कर लगाया और तुम नहीं मिलीं ?'

इसने हँसकर जबाब दिया—'पुन रवि जन्मम् पुनरवि मरणं पुनरवि जननी उदरेशयनं। यह संसारे अति दुस्तारे पाहि मुरारे भज गोविन्दे भज गोविन्दे गोविन्दे भज मूढ़ मते!' सुनो—'आदमी बार बार जन्मता मरता है तब कहीं मनुष्य का शरीर पाता है। इस पर भी मनुष्य शरीर को पाकर कितने आदमियों को आत्मा का दर्शन मिलता है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। तुम आये होगे चले गये होगे। गंगा बढ़ी, कन्दरा का मुँह बन्द हो गया। तुमको दिखायी नहीं दिया और निराश होकर लौट गये। यह साधारण सी बात है। मैं क्यों चकित होने लगी थी!'

सुदर्शन—फिर तुमको मेरा ख्याल नहीं आया ?'

मुण्डभूषणी—'आया और चला गया। जो आता है वह जाता है। इसका सिलसिला कभी बन्द नहीं होता।'

सुदर्शन—तुम विचित्र ढंग की स्त्री हो। मुझे तो कोई एक बार मिल जाये और अगर मन ने उसका संस्कार ग्रहण कर लियातो फिर वह कभी नहीं भूलता।'

मुण्डभूषणी—'यहाँ जो कुछ है विचित्र ही विचित्र है।

मैं विचित्र ढंग की सही। क्या तुम विचित्र नहीं हो? केवल थोड़ा सा भेद है। मैं चाहती रहती हूँ कि मन एक अवस्था पर टिका रहे। तुम यह नहीं चाहते। तुम बदलते रहते हो।'

सुदर्शन—'यह तुमने कैसे जाना?'

मुण्डभूषणी—'इसका जानना बहुत ही सुगम है। पहिले तुम मुझे तू कहा करते थे। अब तू के बदले तुम कहते हो। बदल गये या नहीं!'

सुदर्शन ने सोचा, बात सच्ची है। फिर भी कहने से नहीं रुका—'बदल तो तुम भी गई हो।'

मुण्डभूषणी—'बहुत सही है। मैंने यह नहीं कहा कि मैं बदली नहीं हूं। मैंने यह कहा है कि मैं एक अवस्था में रहना चाहती हूं। तुम नहीं रहना चाहते हो।'

नजर बदली जो देखी उस सनम की।
नदी नालों ने फुरसत एक दम की॥
घटा बदली की छाई आसमां पर।
नजर बदली अजब मुझ पर सितम की॥

सुदर्शन ने कुछ कहना चाहा। मुण्डभूषणी पैंतरा बदल गई। उसे अवसर नहीं दिया। सन्ध्या का बहाना करके चली गई। यह अपने कमरे में गया। हाथ, पाँव मुँह सर धोया और मुण्डभूषणी की बातों पर विचार करने लगा—'यह लड़की प्रकृति का रहस्य है। जब मिलती है, निखरी हुई और विशेष सूक्ष्मता लिये हुये रहती है। जो कहती है नई निराली और विचित्र बात कहती है। इसका कारण क्या है? महन्त ने मेरी बुद्धि की प्रसंशा की। इसे न कोई आश्चर्य हुआ और न इसने मेरी बड़ाई की। मैंने रामायण की चौपाई की व्याख्या की और उसे असाधारण समझता था। इसने उसे एकदम साधारण समझा और इस पर तुर्रा यह कि मेरे और अपने में भेद भी बता गई। मैं चंचल ठहरा, आप निश्चल

बनी और बात बात में सुझा गई कि वह मुझ से बुद्धि, विवेक; शक्ति और विचार में कहीं बढ़ चढ़ कर है। जो बात कहती है जँची तुली! बावन तोला पाव रत्ती। इसकी जिह्वा पर सरस्वती रहती है। वृहस्पति और ब्रह्मा भी अगर इसकी बातें सुनते तो दंग रह जाते! सभ्यता की मूर्त्ति! सुघड़! सुभाषिणी! बुरा कह गई और दिल को बुरा नहीं लगा। मैंने थोड़े ही दिन में समझ लिया कि वह मुझसे अधिक सुयोग्य है। कुछ नहीं, यह जन्म जन्मातर की कमाई का फल है। जन्म जन्म की सिद्धि ने उसे ऐसा बना रखा है। मैं पढ़ा लिखा आदमी हूँ। इलाहाबाद यूनीवरसिटी का बी० ए० हूं। इसको अच्छी शिक्षा भी नहीं मिली। फिर भी मुझे उसका लोहा मानना पड़ता है। यह बात पढ़ने लिखने से प्राप्त नहीं होती.....।'

वही साधू आया—

'मन्दिर में आर्ती होने वाली है, क्या तुम चल सकते हो? जी न चाहे न चलो। आवश्यक नहीं है। स्वामी जी ने ऐसा ही कहा है।'

सुदर्शन ने उत्तर दिया—'आखिर मैं आया किस लिये हूं। चलो चलता हूं।'

उसने कोठरी में ताला डाला। मंदिर में आया। मंदिर का केवल पट खुला हुआ था। आर्ती अभी शुरू नहीं हुई थी। इसके आते ही मुण्डभूषणी भी वहाँ आ पहुँची। दीवार में एक घुंडी लगी हुई थी। उसे दबा दिया और क्षण मात्र में वह अंधेरा जगमग जगमग होने लगा। दबाते ही भक से सफ़ेद रोशनी चमक उठी। फिर सब मंदिर के अन्दर आये। वह देखता क्या है कि मंदिर में विचित्र शोभा है। उसकी दीवारों के ऊँचे हिस्से से लेकर नीचे तक चारों ओर शिव भगवान की

लम्बी लम्बी मूर्त्तियाँ दीवारों से लगकर खड़ी हैं। एक हाथ में त्रिशूल, दूसरे में डमरू है। हर मूर्त्ति की चोटी से पानी का फौव्वारा छूट रहा है लेकिन पानी मन्दिर के आदमियों पर नहीं पड़ता। मस्तिष्क पर अर्द्ध चन्द्र प्रकाशवान है और उससे श्वेत लेकिन ठण्डा और आंखों को तरावट देने वाले हल्के प्रकाश की वर्षा हो रही है। फौव्वारों के पानी में यह प्रकाश विशेष प्रकार का रंग दिखा रहा है जिसे हम इन्द्र धनुष के साथ भी उपमा नहीं दे सकते। मंदिर के बीच में जो शिव-लिंग अर्घ में स्थापित था वह ज्योतिर्लिंग बना हुआ विचित्र प्रकाश का दृश्य दिखा रहा था। लिंग और अर्घ दोनों ज्योतिर्मय हो गये थे लेकिन प्रकाश सब का सफेद, ठण्डा और तरावट देने वाला था।

प्रकाश के होते ही अनेक घण्टों के बजने की ध्वनि सुनाई देने लगी। पांच मिनट पीछे मृदंग की ध्वनि में ॐ ॐ का आनन्द दायक नाद कानों में आया। फिर शिव भगवान की मूर्त्तियों के हाथ के डमरू हिलते हुये बजने लगे। उससे चार प्रकार की आवाजें निकलती थी।

(१) घण्टा (२) मृदंग (३) सारंगी और (४) डमरू और यह सब मिले जुले हुये थे। घण्टे से शंख की आवाज भी निकलती थी। यह थोड़ी देर तक रही फिर डमरू की आवाज ही रह गयी जो सारंगी किंगरी या तम्बूरे की ध्वनि से मिलती जुलती थी। यह खास तरह की आर्ती थी जो कठिनता से किसी ने किसी मंदिर में देखी होगी। महन्त की आज्ञा पाकर सब बैठ गये। सुदर्शन ने भी ऐसा ही किया। महन्त जरा ऊँची जगह पर बैठा था।

डमरू बराबर बजता रहा।

महन्त ने संकेत किया। मुण्डभूषणी ने बड़ी ही सुरीली तान में महिम्न स्तोत्र पढ़ने के पीछे कई भजन गाये। वह किसे याद हैं! उनमें से एक का नमूना यहां दिया जा रहा है। जिस श्रुति ध्वनि का सम्बन्ध आत्मिक कानों से है बेगले और बे जुबान की कलम कैसे किसी को सुना सकती है।

## शब्द

(१) अलबेली सुरत मेरी घट में चली।
अबला हुई गुरु के बल से बली॥

(२) चित्त साध के बैठी भ्रू मध्यम।
जहां चन्द्र सूर का है संगम॥

(३) हुई जोति निरञ्जन दरबारी।
निरखी छवि पचरंग फुलवारी।

(४) जोति में जोती जोति जली।
जगमग जगमग जगमग आली॥ अल०॥

(५) यह लीला देख चली त्रिकुटी।
वहाँ निरखी ओ३म् पुरुष भृकुटी॥

(६) मेघा बरसे रिम झिम, रिम झिम।
बिजली चमके लाली प्रतिबिम॥

(७) इन्द्रीजित मेघ नाद गरजे।
अनुभव जागै गुरु पद परसे॥

(८) ऊषा लाल भानु उजियारा।
नहिं बरनत बने दृश्य न्यारा॥ अल०॥

(९) परिचय पाकर धँसी सुन मँडल।
विस्माधि अवस्था का आथल॥

(१०) बहु घोर अँधेरा नहिं सूझे।
जो सुन पद पहुंचे वह बूझे॥
(११) गुरु दया से मिट गई अँधियारी।
घट सरवर न्हाई सुर्त प्यारी॥
(१२) हुई हँस काग की चेष्टा त्याग।
गये काम क्रोध मद मन से भाग॥ अल०॥
इत्यादि इत्यादि।

अधिक से अधिक ऐसे ५ शब्द गाये गये। फिर महन्त ने कुछ बचन कहे। उसके पश्चात् बन्दना और प्रार्थना हुई और आर्ती समाप्त हुई। महन्त जी मंदिर से बाहर आये। आवाज बंद। प्रकाश गुप्त! लड़की सबसे पीछे निकली। उसने दीवार की घुराडी को हाथ लगाया। पट बन्द हो गये। प्रकाश गुप्त हो गया। फिर सब लोग जाकर सो रहे।

# चौथा अध्याय

## चेला

रात के सतसंग ने सुदर्शन के मन पर गहरा प्रभाव डाला। वह लेटने को लेटा। थोड़ी देर सोया भी। लेकिन अधिक समय सोचने और विचारने में व्यतीत हुआ। वह पढ़ा लिखा था। कभी कभी साधुओं के संग का लाभ भी उठाता था। उसका बाप यों तो परले सिरे का संसारी और स्वार्थी था लेकिन नानक मत का शिष्य था। गुरु ग्रन्थ साहिब का नित्य पाठ किया करता था। साधू महात्मा भी उसके पास आते जाते रहते थे। सुदर्शन को उनके बचन सुनने का अवसर मिला करता था। यहां महन्त की संक्षेप वार्त्ता से उसकी आँखे खुल

गई। बहुतसी बातें जो रहस्य समझी जाती थीं प्रगट होगईं और वह श्रद्धालु बन गया।

वह प्रातःकाल उठा, नहा धोकर उसने पहिले दिन के साधू से कहा—"मैं महन्त जी का दर्शन करना चाहता हूं।" महन्त भी अभी अभी भजन पूजा से उठा था। यह उसी समय बुला लिया गया।

महन्त ने पूछा—"कहो! क्या कहते हो?"

सुदर्शन ने उत्तर दिया—"आप की शरण में आना चाहता हूँ।'

महन्त - मैंने पहिले ही समझ लिया था कि तुम संस्कारी अधिकारी हो। नहीं तो मैं मन्दिर की आर्त्ति में किसी अन्य व्यक्ति को नहीं आने देता। तुम पहिले आदमी हो जिसे ऐसा अवसर दिया गया है।'

सुदर्शन—'क्यों? क्या रोक टोक है?'

महन्त—'हाँ! ऐसी ही बात चीत है।'

सुदर्शन—'और आप के चेले?'

महन्त - 'इस समय मंदिर में सात साधु हैं। आँठवीं मुण्ड भूषणी और नवाँ मैं हूँ। इन साधुओं को तुम चेला कह सकते हो। उनके सिवाय न और कोई आता जाता है और न मुझे चेला बनाने की धुन है।'

सुदर्शन—'और अगर कहीं गांव के लोग आर्त्ति में सम्मिलित होना चाहें तो आप उन्हें मना तो न करते होंगे?'

महन्त— यों तो यह मन्दिर पुराना है लेकिन इसमें पहिले पूजा नहीं होती थी। तुमने देखा होगा कि मन्दिर के पश्चिम ओर एक छोटा मोटा शिवाला है। गाँव के लोग आते हैं तो उसी में पूजा पाठ करके चले जाते हैं। सायंकाल में न यहां

कोई आता है न आने का नियम है और न किसी को कथा वार्ता सुनने का चाव है। इस लिये अब तक गाँव का कोई आदमी आर्ती के समय नहीं आया। अगर कोई आ भी गया तो मैं या तो खुली जगह में बैठ कर उससे मिल लेता हूँ या कमरे में बुला कर बातचीत कर लेता हूँ। मन्दिर में कोई नहीं आता। विशेष करके मैं एकान्त सेवी हूँ। मिलना जुलना भी नहीं चाहता। इसलिये यहां कभी भीड़ भाड़ नहीं होती।'

सुदर्शन—फिर भी यह मन्दिर है। तीर्थ स्थान है। अगर यहाँ के आदमी नहीं आते तो बाहर से ही आते होंगे।'

महन्त—'यह पहिले अवश्य तीर्थ स्थान रहा होगा। अब उसकी भी मर्यादा जाती रही। महाराष्ट्र देश में कुछ ब्राह्मणों के घराने हैं जो प्राचीन समय से इस मंदिर के श्रद्धालु हैं। वह कभी कभी आ जाते हैं। यहां गंगा पश्चिम की ओर बही है। पश्चिम वाहिनी होने से वह इस जगह को पवित्र समझते हैं। वह भी बहुत कम आते हैं। लेकिन मंदिर के चेले होने के कारण यह आर्ती में सम्मिलित कर लिये जाते हैं।'

सुदर्शन—'मंदिर का खर्च इनकी भेंट से चलता होगा।'

महंत हँसा—'न मैं ऐसी भेंट का इच्छुक हूं न इस झमेले को पालता हूँ। मैं बचपन से साधू भी नहीं हुआ हूं। मुझे कुछ थोड़ी सी पेंशन मिलती है। उसी पर निर्भर हूं।'

सुदर्शन—'क्षमा कीजिये। मैंने बेतुकी और निरर्थक बातें करके आपका अमूल्य समय नष्ट किया। अब मुझे अपने पवित्र चरणों की छाया में शरण लेने का सौभाग्य प्रदान कीजिये।'

महंत—'नई जगह में आने से पूछा पेखी के भाव को उत्तेजना मिलती ही है। ऐसा होना भी चाहिये। मैं इससे घबराता नहीं।'

सुदर्शन—'मैं इस इच्छा की पूर्ति किसी और समय करूँगा अब तो मुझे अपना शिष्य बनाइये।'

महन्त—'एवमस्तु।'

उसने मुण्ड भूषणी का नाम लेकर पुकारा। वह आ पहुँची। फिर उस साधू को बुलाया जो उसका गुरुमुख था। यह वही मनुष्य था जिसे सुदर्शन के आव भगत का काम सौंपा गया था।

यह तीनों अँधेरे मंदिर में आये। मुण्ड भूषणी ने दीवार की घुंडी दबाकर उसे प्रकाशित कर दिया। उसके उत्तर में नीचे जाने की सीढ़ियों का सिलसिला दिखाई दिया। महंत उस राह से चला। मुण्ड भूषणी और साधू उसके पीछे हुआ। सुदर्शन सब के पीछे था।

पहिले यह सुण्डाकार और तीन कोण वाले मन्दिर में आये जिसका वर्णन पहिले किया जा चुका है। फिर उससे होकर नीचे के मन्दिर में पहुंचे जो कन्दरा के ऊँचे सिरे पर था। यहाँ बहुत से मिट्टी के दीपक जल रहे थे। एक प्रकार की सुगन्धि भी फैली हुई थी।

महन्त शिव लिंग के समीप बैठ गया। उसे अपने सामने बिठाया। साधू और मुण्डभूषणी आस पास बैठ गये। सुदर्शन ने फिर कुछ नकद और मिठाई भेंट की!

सब से पहिले महन्त ने उसे एक सीधे साधे आसन पर बैठने की युक्ति बताई जिस पर बैठने में किसी प्रकार की कठिनाई प्रतीत नहीं हुई। फिर तीन बंद लगाने की शिक्षा दी जिसका निचोड़ संतों के इन दोहों में है:—

तीन बन्द लगाय कर, सुन अनहद टनकोर।
नानक सुन्न समाध में, नहीं सांझ नहिं भोर॥
(नानक साहिब)

तीन बंद लगाय कर, मुख से कछू न बोल।
बाहर के पट देय कर, अन्तर के पट खोल॥

( कबीर साहब )

तीन बंद लगाय कर, नाम निरञ्जन ले।
अन्तर के पट तब खुलें, जब बाहर के दे॥

( कमाल साहिब )

आंख कान मुख मूंद कर, अन्तर वृती को साध।
चित्त की चंचलता हरे, मेटे सकल उपाध॥

बंद लगाने की शिक्षा देकर उसे अनहद योग, नाद योग, सुरत शब्द योग, श्रुति योग, प्रणाव योग और उद्गीत योग की शिक्षा दी। इन सब शब्दों का एक ही अर्थ है।

जब यह सब समझा चुका, अपने सामने बिठाकर साधन करने की युक्ति बताई। उसने अन्तर में चित को एकाग्र किया। इसने दृष्टि जमाकर उसके आन्तिरिक भाव को उकसाया। वह उसी समय समाहित होने लगा। तब यह तीनों भी साधन में साथ साथ लगे। आधे घण्टे के लगभग यह साधन में रहे। फिर महन्त ने सबको जगा कर उससे पूछा—'तूने क्या अनुभव किया?'

उसने अपनी अन्तर की चढ़ाई का ब्यौरा कह सुनाया।

महन्त ने कहा—'लो! अब तुम्हारी दीक्षा हो चुकी। इसी प्रकार नित्य ही सायं काल और प्रातः काल साधन किया करो। हर तरह के मांस मदिरा भंग अफीम से बचते रहना। यह दया मार्ग, अहिंसा मार्ग, प्रेम मार्ग, भक्ति मार्ग और पन्थ कहलाता है। पंथ का रास्ता घट में है बाहर नहीं है।

श्रत्योर्विभिन्ना स्मृत्योर्विभिन्ना, नसः मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्।
धमस्य तत्वं निहितं गुहायां महा जनो येन गतः स पन्थाः॥

अभ्यास करते रहने से तुम को आंतरिक साधन की आप ही आप समझ आती जायेगी। अगर कठिनाई प्रतीत हो तो मुझसे कुछ दिनों पत्र व्यवहार करते रहना जिसमें सहायता मिलती रहे। इलाहाबाद यहां से दूर नहीं है। कभी कभी यहाँ आ जा सकते हो। सतसंग का लाभ होता रहेगा।

सुदर्शन ने स्वीकार कर लिया।

मुण्डभूषणी ने एक जगह अपना पाँव रख दिया और मंदिर के सारे घण्टे उसी समय टनटन करने लगे और उनकी ध्वनि चारों ओर गूँज उठी।

फिर यह उसी राह से ऊपर आये। कमरे में पहुँच गये। साधू तो चला गया। सुदर्शन और मुण्डभूषणी महन्त के पास बैठ गये।

महन्त ने कहा—'अगर तुमको इस साधन के विषय में कुछ प्रश्न करने हों तो मैं तुमको खुशी से हुक्म देता हूं।'

सुदर्शन ने जवाब दिया— मैं इस साधन का हाल पहिले भी कुछ सुन चुका हूँ। पहिले परिचित नहीं था। अब आपकी दया से यह कमी पूरी हो गई। केवल इतना और बता दीजिये कि यह नया है या पुराना।'

महन्त—'यह बहुत पुराना साधन है परन्तु पुस्तकों में इसका वर्णन संकेत मात्र किया गया है। यह सनातन से है और बराबर चला जायेगा। इसका विधान शिष्य और गुरु की प्रणाली द्वारा चलता है। बिना गुरु की सहायता के इसे कभी नहीं करना चाहिये नहीं तो हानि होती है और त्रुटि रह जाती है। यह सदैव से आचार्य के आधीन रक्खा गया है। पहिले लोग प्राण योग द्वारा इसे करते थे। मुद्रा से भी काम लेते थे जो बहुत कठिन था। अब यह साधारण और सरल

बना दिया गया है।'

सुदर्शन—'क्या पुस्तकों के पाठ से इसका लाभ नहीं हो सकता।'

महन्त—'नहीं ! कदापि नहीं !!

(१) बिन गुरु घट में राह न चलना।
विघ्न अनेक पन्थ में मिलना॥

(२) गुरु रक्षा जाके संग नाहीं।
तिसको काल कर्म भरमाहीं॥

(३) अभ्यासी को कहे पुकारी।
शब्द सुनो आवो शरन हमारी॥

(४) जो कोई काल शब्द में रचिया।
घर नहिं जाय राह में पचिया॥

(५) काल शब्द की यह पहिचान।
मन चाहे धन आदर मान॥

(६) इसकी ओर चित्त न लाना।
तब निज घर का भेद खुलाना॥

सुदर्शन—'पहिले इसका क्या नाम था ? और आया वेदों में भी इसका वर्णन है या नहीं ?'

महन्त—'वैदिक समय में इसका नाम श्रुति था। श्रुति का अर्थ है:—सुनी हुई अथवा सुनी गई अथवा सुनने की वस्तु।'

सुदर्शन— लेकिन श्रुति तो वेद वाणी, मन्त्र या संहिता भाग को कहते हैं।'

महन्त 'शब्द मौजूद है। कोष में अर्थ देख लो और संतोष करलो।'

सुदर्शन— तो क्या वेदों का मंत्र भाग श्रुति नहीं है ?'

महंत—'है परन्तु ऋषियों ने जो ध्वनात्मक वाणी

अपने घट में सुनी उसे छंद बद्ध कर दिया। उसी का नाम मंत्र या संहिता हो गया। अब वह वर्णात्मक है और अक्ष दाँत, जिभ्या, कण्ठ और वाणी द्वारा उच्चारण किया जाता है। ध्वनि और वर्ण में भेद होता है। लोग बारह मुखी हो गये। अंतर्मुखी साधनों को भूल गये। इसका परिणाम यह हुआ कि उनको श्रुति का यथार्थ बोध नहीं हुआ और शब्दों में अटक रहे।'

सुदर्शन—'इसका कोई प्रमाण भी है या आप ही ऐसा कहते हैं?'

महन्त—'हम उसका प्रमाण क्या दें। श्रुति का शब्द प्रचलित है। वह विचारने योग्य है। वह आप अपना प्रमाण है। इसी को स्वतः प्रमाण बोलते हैं। वह अतः प्रमाण नहीं है। अतः प्रमाण होता तो मैं इसका प्रमाण देता। परम्परा पहिले की तरह चली आ रही है और वह ऐसी ही रहेगी। तुम दीक्षित हो चुके हो। अब इसका प्रमाण अपने घट में खोजो।'

सुदर्शन—'इस श्रुति को ऋषियों ने किस तरह शब्द बद्ध किया?'

महन्त—जो ध्वनि घट में सुनी उसे मनुष्य ने भाषा के रूप में बदल दिया, जैसे ध्वनि तो जो रही होगी वह वैसी की वैसी है! छन्द बद्ध इस तरह से किया :—

शन्नो मित्रः शम वरुणाः शन्नो भवति अर्यमान,
शन्नो इन्द्रः वृहस्पति शन्नो विष्णुरुकमहः।

सुदर्शन—'फिर भी कुछ न कुछ तो ऐतिहासिक प्रमाण होना चाहिये।'

महन्त—'जब श्रुति का अभाव हो गया, कई वैदिक शाखायें उत्पन्न हो गईं और गुप्त विद्या के रूप में इसकी शिक्षा का प्रचार रहा। इसी परिपाटी का सम्बन्ध उपनिषदों के

ऋषियों से है। उपनिषदों में इस श्रुति का नाम उद्गीत अथवा उधर का राग है। उसी को अब नभ मण्डल की ध्वनि कहा जाता है। इसका संकेत वृहदारण्यक उपनिषद, छान्दोग्य उपनिषद, नाद बिन्दु उपनिषद, हँस उपनिषद आदि में अब भी मौजूद है। तुम उन्हें पढ़कर अपना सन्तोष कर सकते हो। तेज बिन्द उपनिषद में भी यही बात है और अथर्ववेद ने और कई उपनिषदों ने इसका राग अलापा है। इसलिये यह नया तो कभी नहीं है। हां, शिक्षा प्रणाली गुप्त रूप में चली आती है और जब तक कोई सिद्ध गुरु नहीं मिलता तब तक लाभ कदापि नहीं होता।'

सुदर्शन—'यह अब तक कैसे चला आया ?'

महन्त 'यह सीना ब सीना आया है। वैदिक शाखायें लोप हो गईं। उपनिषदों के ऋषि मर मरा गये। फिर यह साम्प्रदायिक रूप में चला। जब यह भी सर्वांग से बाहिरमुखी हो गये तब संतों ने इसको स्पष्ट रीति से समझाने का प्रयत्न किया।'

सुदर्शन—'संत आप किसको कहते हैं!'

महन्त—'जो नाद विद्या में प्रवीण, श्रुति साधन में निपुण कम से कम सत् लोक पहुँचे हुये होते हैं, वह संत कहलाते हैं। इनमें कबीर साहिब, नानक साहिब, पलटू साहिब, दादू साहिब, राधास्वामी साहिब आदि संतों का नाम मुख्य है। इन्होंने इसका गुप्त रीति से प्रचार किया। अब इस समय सत् पुरुष राधास्वामी दयाल ने उसे स्पष्ट कर दिया।

सत जुग त्रेता द्वापर बीता। काहु न जानी शब्द की रीता॥
कलियुग में स्वामी दया बिचारी। परगट करके शब्द पुकारी॥
जीव काज स्वामी जग में आये। भव सागर से पार लगाये॥
तीन छोड़ चौथा पद दीन्हा। सत्त नाम सतगुर गति चीन्हा॥

सुदर्शन—'क्या कहीं आपको राधास्वामी मत से सम्बन्ध तो नहीं है?'

महन्त हंसा—'इस समय सिवाय राधास्वामी मत के और किसी को इस पन्थ का ज्ञान नहीं है। मैंने उसी सिलसिले में शिक्षा पायी और मुझे गुरू की दया से ऐसी कुँजी मिल गई कि मैं अब सद् शास्त्रों के बंद दरवाजों को भली भांति खोल सकता हूं।'

सुदर्शन—'अच्छा हुआ कि आपका दर्शन मुझे मिल गया। मेरे सारे संशय निवारण हो गये। मैं अपने आप को भाग्यशाली समझता हूँ। आपकी शरणागत न आया होता तो मुझे कदापि यह भेद न मिलता और मैं मारा मारा फिरा करता। अब आपका विशेष समय न लूँगा। फिर कभी इस विषय में बातचीत करूँगा।'

महंत—'तुम अधिकारी हो। जिसके हृदय में अधिकार का अँकुर जम जाता है वह गिरते पड़ते भूलते भटकते अपना रास्ता निकाल लेता है। न कैसे आते! यह तुम्हारे अधिकार की बात नहीं थी। और मैं तुमको भेद क्यों न देता? क्योंकि अधिकारी से कोई बात नहीं छुपाई जाती।

गूढ़हु तत्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहां पावहिं॥

# पाँचवाँ अध्याय

## मन्दिर का इतिहास

दोपहर के पीछे सुदर्शन फिर महंत के पास आया। वह महंत की तरह एकान्त सेवी नहीं था और अकेले रहना पसन्द नहीं करता था। नवयुवकों के लिये बड़ों के साथ रहना बड़ा लाभदायक है। बंगले पर भी उसके साथ कई आदमी रहते थे।

महंत ने कहा—'तुम अकेले घबराते हो और मैं अकेला ही रहना चाहता हूँ। यह अभ्यास की बात है।'

सुदर्शन ने जबाब दिया—'घबराता तो नहीं, पढ़ना लिखना अकेले में होता था। लेकिन यह जरूर है कि अधिक देर तक अकेले रहने से जी उकता जाता है। यों तो जो सिर पर आती है उसे झेलना ही पड़ता है।'

महंत—'तुमने कहां तक पढ़ा है?'

सुदर्शन—'मैंने इसी साल बी० ए० पास किया है।'

महंत सुनकर प्रसन्न हुआ—'आज कल की शिक्षा में बहुत से विषय होते हैं। मेरे समय में यह दशा नहीं थी।'

सुदर्शन—'क्या आपने कालिज में शिक्षा पायी है?'

महंत—'हां! कुछ पढ़ा लिखा है। कालिज में मेरी रुचि अधिकतर इतिहास की ओर थी। तुम किस विषय को पसन्द करते हो?'

सुदर्शन—'मुझे भी इतिहास में रुचि है और साथ ही ऐतिहासिक स्थानों के देखने भालने का बहुत ख्याल रहता है।'

महंत—'तुमने इस मन्दिर को देखकर क्या अनुमान किया?'

सुदर्शन—'मेरी समझ में यह जगह पुरानी है। अनुमान कहता है कि यह बौद्धों के समय की होगी। चिन्ह ऐसे ही पाये जाते हैं।

महन्त—'मैं भी ऐसा ही समझता हूँ।'

सुदर्शन—'जगह पुरानी है और उसमें वर्त्तमान समय की कला कौशल से काम लिया गया है।'

महन्त—'इससे तुम्हारा क्या तात्पर्य है?'

सुदर्शन—'मसलन घण्टा, मृदंग और डमरू का घुण्डियों

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

के दबाने से समय समय पर आवाज देना और साथ ही एक दम रोशनी हो जाना यह सब इसी समय की आधुनिक रचनाएं मालुम होती हैं। उस समय इन बातों का रिवाज नहीं था।'

महन्त—'तुम ने ठीक अनुमान लगाया। पहिले इसमें एक साधू महोदय रहते थे। वह पहिले इंजीनियर रह चुके थे। मैंने और उन्होंने इसमें मिलकर काम किया है। एक जगह बिजली का खजाना है। उसके साथ डायनमा लगा हुआ है। तीनों खंड अथवा तीनों मंजिल बिजली के तार से भरे हुये हैं। इस काम में मैंने कई साल लगाये। अब इस खेल से जी भर गया।'

सुदर्शन—'और तो जो कुछ है वह ठीक है लेकिन फौव्वारों का प्रबन्ध कैसे किया गया है?'

महन्त—'शिव भगवान की मूर्त्तियों के सर के समीप पानी के छोटे छोटे हौज बने हुए हैं। उनका सम्बन्ध फौव्वारों से है। जब घुण्डी दबाने से बिजली उत्पन्न होती है पानी उछल पड़ता है और फौव्वारे छूटने लगते हैं। इस काम में कोई कठिनाई नहीं हुई।'

सुदर्शन—'मैं इस विषय को कुछ कुछ समझता हूं। आपको यह खेल करने की आवश्यकता क्यों हुई। इसमें तो खर्च भी बहुत हुआ होगा।'

महन्त हँसा—'खब्त! खेल तो खेल ही है। खेल की रुचि हुई खेल खेल लिया। अब इससे जी उकता गया। रुपया पास था। साधू इंजीनियर भी मालदार था। हम दोनों के दिल मिले हुए थे। यह खेल कर गुजरे। इसमें अभी कुछ और बढ़ाना था। इंजीनियर साधू के चले जाने से इसकी समाप्ति हो गई।'

सुदर्शन—'लेकिन इसकी जड़ में आपकी नीयत क्या थी?'

महन्त—'मैं २० वर्ष तक नौकरी करके अलग हो गया।

थोड़ी सी पेन्शन मिली। बाप का जमा किया धन भी कम नहीं था। न सन्तति थी न कोई सम्बन्धी था। यहाँ से आठ मील दूरी पर एक राधास्वामी धाम है। वहां कुछ सतसंगी रहते थे। मैंने कुछ काल वहाँ का सतसंग किया। फिर यहाँ आया। इस जगह शैव सम्प्रदाय के एक महात्मा उपस्थित थे। उनकी सेवा में रहने लगा। वह चेला बनाने से भागते थे। मुझ पर इतनी कृपा की कि अपनी सेवा में स्वीकार कर लिया। आदमी दयालु थे। हृदय के शुद्ध थे। शैव मत के सिद्धात को भली भांति समझते थे। यह सब मन्दिर उनके समय में टीले के आकार में बन गये थे। मिट्टी ने उन्हें दबा रक्खा था। वह इस मंदिर में कोठरी के पास रहते थे जिसमें अब गांव के लोग आकर कभी कभी पूजा करते हैं। दैव योग से कुछ ही दिनों पीछे वह साधू इंजीनियर साहिब आये जिनका वृतान्त मैंने अभी सुनाया है। वह साधु स्वभाव थे। विरक्त नहीं थे गृहस्थी थे। वह यों ही घूमते फिरते आ निकले थे। महात्मा जी से मिले, ठहरे, प्रातः काल इस जगह को देखा और मुझसे कहने लगे यह टीला नहीं है। इसके नीचे इमारत है। जब यह बात महात्मा जी ने सुनी उन्हें आश्चर्य हुआ। उनकी आज्ञा से हम दोनों ने इसे खोदा। यह ऊपर का मंदिर निकल पड़ा। तीनों चकित हुए। जब मंदिर मिट्टी से साफ कर लिया गया सीढ़ियों के सिलसिले का पता लगा। खुदाई होने लगी। फिर त्रिकोणाकार मंदिर निकला और जब उसके नीचे की सीढ़ियाँ खोदी गयीं, तीसरी मंजिल दिखाई दी। हम दोनों को बहुत परिश्रम करना पड़ा क्योंकि उस समय और कोई नहीं था। तीसरे मंदिर के नीचे खोदने से गार की बारी आई। अनुमान कहता है कि इसमें भी सीढ़ियां रही होंगी और नदी से मिले रहने के कारण वह टूट फूट गई होंगी। पानी बहा लेगया होगा। निश्चय

है कि यह बौद्धों की जगह रही होगी और बौद्ध भिक्षु इसी राह से पानी भरने जाते रहे होंगे। इसके सिवाय और कोई बात समझ में नहीं आई। मंदिर तीनों ही साबित थे। उन्हें काल के हाथों से हानि नहीं पहुँची थी। वह जैसे पहले थे वैसे अब भी हैं। हम दोनों ने बहुत दिनों में उनको साफ किया। तब यह अपनी असली हालत पर आये।'

सुदर्शन ने कहा—'यहां तक तो मुझे आपके साथ सहमति है। यह अवश्य बौद्ध भिक्षुओं का स्थान है लेकिन इसमें यह शिव लिंग कैसे स्थापित किये गये क्योंकि बौद्ध शिव जी के उपासक नहीं थे। हिन्दू देवताओं की मूर्त्तियाँ तो वह बनाते थे। इनके होने पर भी विश्वास रखते थे जैसा कि अब तक इलफेन्टा इत्यादि टापुओं में ब्रह्मा विष्णु और महेश की आश्चर्यजनक और बड़ी बड़ी मूर्त्तियां उनके हाथों की बनी हुई मौजूद हैं लेकिन बुद्ध भगवान से अधिक इनको कभी मुख्यता और प्रतिष्ठा नहीं दी गयी।'

महन्त ने उत्तर दिया – 'लिंग पुराने नहीं हैं, नये हैं। जब यह मंदिर निकले साधू जी की सम्मति हुई कि तीनों में शिव लिंग स्थापित किये जायें। हमने उनकी प्रसन्नता के निमित्त ऐसा ही कर दिया। साथ ही उनकी इच्छा थी कि मंदिर में प्रतिदिन महिम्न स्तोत्र का पाठ होता रहे। वह भी इनकी आज्ञानुसार अभी तक होता रहा है।'

सुदर्शन—'क्या सूर्य चांद और दीवारों में शिव जी की मूर्त्तियां भी नई हैं?'

महन्त—'नहीं! यह पुरानी है। इनका मसाला विचित्र प्रकार का है जो अब नहीं मिलता है। इंजीनियर साहिब आप हैरान थे कि किस तरह और कहाँ से और किन किन चीजों के मेल से इनको तैयार किया गया है। इनमें जो थोड़ा अदल

बदल हुआ वह इंजीनियर साहिब की अपनी उपज है। मूर्त्तियों के हिस्सों की तोड़ फोड़ में भी उन्होंने बड़ी चतुराई से काम लिया है। सिरों के भाग सब के सब छिद्र वाले हो गये हैं। उनके अन्दर से बिजली की रोशनी निकलती है। उन्हें आप शोक था कि वह बनी बनाई मूर्त्तियों को कमजोर कर रहे हैं लेकिन इसके सिवा और कोई उपाय नहीं था।'

सुदर्शन—'यह तो सब मेरी समझ में आ गया लेकिन मन्दिरों की बनावट खास खास तरह की है। इसमें भी कोई भेद अवश्य होगा मसलन बीच का मन्दिर त्रिकोणाकार है ऊपर और नीचे का गोल और गुम्बदार है। इसका क्या कारण है?'

महन्त—'तुम को मालुम नहीं है कि कन्दरा से लेकर त्रिकोण मंदिर तक की जमीन चट्टानी और कंकरीली है। बौद्ध राजों (मेमारों) को इस बात का ज्ञान था। इसलिये उन्हीं ने मौके मौके के साथ उसे तराशा है। एक कारण तो यह है। दूसरा कारण यह प्रतीत होता है कि यह बौद्ध भिक्षु योगाचार्य्य की शाखा के थे जो शब्द योग के साधन करने वाले हुआ करते थे। इनको योग के सात चक्रों का ज्ञान था जो हमारे प्राणायाम के गायत्री मंत्र में मौजूद हैं जैसे—

(१) ॐ भूः (२) ॐ भुवः (३) ॐ स्वः (४) ॐ महः (५) ॐ जनः (६) ॐ तपः (७) ॐ सत्यं और वह मंदिरों के आकार में उन चक्रों को दिखाना चाहते थे। तीन पहिले के चक्र तो बना लिये। शेष चार चक्रों के बनाने का विचार रहा होगा। इसका उन्हें अवसर नहीं मिला। मुसलमानों की धर पकड़ से घबरा कर वह इसको मिट्टी से ढ़क कर भाग गये। समय मिला होता तो ऊपर के चार चक्र भी मन्दिराकार बना जाते। मेरी समझ में यही बात आती है।'

सुदर्शन—'आप का यह समझना ठीक है, लेकिन यहाँ

मुझे थोड़ा सा संशय हो रहा है। क्या बौद्ध योगाचार्य्य की शाखा के श्रद्धालु वैदक धर्म के अनुयायी थे? इतिहास से यह पता चलता है कि यह वेद विरुद्ध थे।'

महन्त—'बुद्ध धर्म की दो शाखायें हैं। एक छोटी राह (हिनायान) और दूसरी बड़ी राह (महायान) है। छोटी राह हिनायान का सम्बन्ध बुद्ध भगवान की शिक्षा से है जिन्होंने मनुष्य जीवन गढ़ने और जीते जी निर्वाण प्राप्त करने का सुगम उपाय निकाला था। इसलिये वह ईश्वर ब्रह्म इत्यादि सिद्धांतों पर विचार नहीं करते थे और न इधर किसी को ध्यान दिलाते थे। उनकी समझ में यह झमेला ही झमेला था। महायान की गढ़त में बहुत से आचार्यों के विचार सम्मिलित कर लिये गये थे जिसमें ईश्वर ब्रह्म, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सारे देवी देवताओं के भाव और विचार मिला दिये गये थे। अष्टांग योग (आठ प्रकार के साधन) के मानने वाले दोनों ही थे। इसलिये योगाचार्य्य के अनुयाइयों ने सात आत्मिक चक्रों का विषय अपने शब्द योग में मिला लिया तो इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। असल में बुद्ध धर्म हिन्दुओं ही का मार्ग था। वेद मार्ग उनसे प्राचीनतर है। बुद्ध धर्म पर वेद मार्ग का प्रभाव पड़ना कोई विचित्र बात नहीं है।'

सुदर्शन—'मैं समझ गया। अब यह कहिये कि इन मंदिरों की बनावट में वह क्या समझाना चाहते थे?'

महन्त—(१) ओ३म् भू अनेक वाद जगत् है।

(२) ओ३म् भुवः त्रिपुटी वाद जगत है जिसका चिन्ह ओ३म् है।

(३) ओ३म् स्वः अद्वैत जगत् है।

यह तीन रचना के निचले चक्र हैं। इनके ऊपर इन्हीं के सदृश तीन उच्च चक्र है।

(४) ओ३म् सत्यं सत का चक्र है।

(५) ओ३म् तपः चित शक्ति का चक्र है।

(६) ओ३म् जनः उत्पत्ति का चक्र है।

यह ६ चक्र हैं। ऊपर के चक्रों की उल्टी सूरते यह निचले चक्र हैं क्योंकि वह प्रतिबिम्बत है। बिम्ब सीधा होता है। प्रतिबिम्ब हमेशा उल्टा बनता है जैसा कि तुमने झील के किनारे के वृक्षों की प्रतिबिम्बित छाया में देखा होगा। उनके मध्य में--

(७) ओ३म् महः ( महालोक ) है।

जो मध्य में दोनों ऊपर और नीचे के विभागों को जोड़ता है। जो ऊपर है वही नीचे है। भेद केवल बिम्ब और प्रतिबिम्ब का है ऊपर के चक्रों में सत की रचना है। नीचे के तीनों चक्रों में प्रतिबिम्बित रचना है। इन तीनों मंदिरों के आकार में इस दृश्य के दिखाने का मन्तव्य था।

सुदर्शन--'शैव महात्मा ने तो आपको चेला नहीं बनाया। फिर आप किसके चेले हुए और यह ज्ञान आपको कहाँ से प्राप्त हुआ?'

महन्त--'मैं तुमसे पहिले ही कह चुका हूँ कि मैंने राधास्वामी धाम में शिक्षा पाई थी। इंजीनियर साहिब आप शब्द योग के अभ्यासी थे। उन से मेरी समझ बूझ की पूर्त्ति हुई और उनकी कृपा से मैंने इस योग के तत्व को समझा।'

सुदर्शन--'यह सिद्धांत बार बार सोचने और विचारने का है। क्या कहीं शिव जी के मुण्डमाल से भी इसकी सदृश्यता है?'

महन्त ने आश्चर्य की दृष्टि से सुदर्शन को देखा--'हाँ!

इसमें भी वही गूढ़ तत्व और रहस्य है। शिव जी के मुण्डमाल में १०८ दाने होते हैं। यह जगत की १०८ शक्तियों के चिन्ह हैं और यही कारण है कि यह मुण्डमाला में उल्टी और सीधी रीति से लगाये गये हैं। शैवों में और शाक्तिकों में द्वादश चक्र का विधान है और संत मत में भी सिर्फ द्वादश चक्र माने जाते हैं। द्वादश को ९ से गुणा करने पर १०८ हो जाते हैं। मुख्य द्वादश ही हैं जैसे (१) गुदा (२) इन्द्री (३) नाभी (४) हृदय (५) कण्ठ (६) रुद्राक्ष, तीसरा तिल अथवा रुद्र की आँख इत्यादि।

सुदर्शन—'वह इंजीनियर साहिब कहाँ हैं ?'

महन्त-'शोक की बात है कि जबसे वह गये फिर नहीं लौटे। उदासीन वृत्ति वाले थे और ऐसा ही जीवन व्यतीत करते थे। इधर शैव महात्मा का भी देहान्त हो गया। मैं अकेला रह गया। यह थोड़े से साधू मैंने जान बूझकर यहाँ रख छोड़े हैं। यह सब अभ्यासी हैं। इन में सब से अधिक समझदार और अनुभवी मुण्डभूषणी है।'

सुदर्शन—'यह बताइये कि शैव धर्म कपोल कल्पित ही है या उसमें भी कुछ सचाई है ? लिंग और अर्घ के पूजने का क्या तात्पर्य है ?'

महन्त—सुनो भाई ! मैं पक्षपाती नहीं हूं। मेरी समझ में सारे मत मतान्तरों में सचाई है। यह सचाई उपेक्षिक हुआ करती है। जब तक किसी मत में आन्तरिक साधन का विधान रहता है तब तक अभ्यास द्वारा यह यथोचित समझ में आती रहती है और जब लोग बहिर्मुखी वृत्ति वाले हो जाते हैं तो फिर नैमत्तिक रीति से पाखंड बाद का प्रचार होने लगता है और लोग तत्व बात से अपरिचित हो जाते हैं। रचना जहाँ होगी धारों के रूप में ही होगी। इसी धार का नाम लिंग है

और जहाँ जहाँ यह धार उपस्थित होगी उसी को अर्घ बोलते हैं। इस हिसाब से रचना में द्वादश ज्योतर्लिंग हैं और द्वादश अर्घ हैं। यह सब मनुष्य के पिण्ड में उपस्थित हैं और इसी नर देह में इनकी प्राप्ति का साधन किया जाता है। जब आन्तरिक-ज्ञान लोप हो गया बाहर मुखी पाखंड वादियों ने बाहर १२ ज्योतिर्लिङ्ग जैसे—(१) अमर नाथ (२) विशेश्वरनाथ (३) वैद्यनाथ (४) रामेश्वर नाथ इत्यादि १२ लिंग स्थान स्थापित कर लिये और उसी की पूजा की परम्परा चल निकली। मैं इसे कपोल कल्पित नहीं कहता।'

सुदर्शन—'वाह महाराज ! वाह !! आज आपने वह बात सुनाई जो मैंने कभी नहीं सुनी थी। आप धन्य हैं।'

महन्त—'भाई कुछ दिनों सतसंग करो, तब तुमको आन्तरिक और बाहरी जगत का ज्ञान होगा। इस समय राधास्वामी धाम में इसी दृष्टि से सत्संग कराया जाता है। तुम्हें अवसर मिले तो तुम कभी कभी वहाँ हो आया करो। बड़ा विचित्र स्थान है। प्रयाग और काशी के मध्य में है। यहाँ से केवल ४ कोस की दूरी पर है।'

सुदर्शन—'मेरा एक प्रश्न अब तक बाकी है। आपके इस तरह खेल करने का मन्तव्य क्या था ? क्योंकि यह खेल ही खेल है।'

महन्त हँसा—'इंजीनियर साधु का विचार था कि लौटने पर वह चार शेष स्थानों को ऊँचे चक्रों की सूरत में बना देंगे और फिर हम दोनों मिलकर अधिकारियों को शब्द योग की शिक्षा अधिकता के साथ दे सकेंगे। सात मन्दिर ऊपर व नीचे उन्हें आन्तरिक चक्रों के समझाने में सहायक होते। न वह लोटे न उसका प्रबन्ध हो सका। मैंने आन्तरिक दृष्टि से पूर्ति करली। गुरू की दया से अब कुछ करना धरना नहीं रहा।

अब यह विचार मन से भी जाता रहा। जमाअत बढ़ाने की ओर दृष्टि नहीं है। इसलिये इधर से ध्यान हट गया। तुम आये। तुम में अधिकारी के लक्षण पाये गये। इसलिये तुम्हें बिना किसी हिचकिचाहट के दीक्षा दे दी गई।'

सुदर्शन--'अगर जमाअत बढ़ती है तो इस में क्या हानि है ?'

महन्त--(१) सिहों के लेंहड़े नहीं, हंसों की नहिं पांति।
लालों की नहिं बोरियाँ, साध न चले जमात॥

(२) सिख साखा बहुते किया, सत्गुरु किया न मीत।
चाले थे सत् लोक को, अन्तहि अटका चीत॥

(३) वाचक ज्ञानी की दशा, हँसी आवै मोहि देख।
सिख साखा बहुते किया, मिला न अगम अलेख॥

सुदर्शन--'मेरे प्रश्न मंदिर के विषय में समाप्त हो गये लेकिन यह कहिये कि मेरी सूरत देखकर आपने अधिकार और संस्कार का पता कैसे पाया ?'

महन्त--'साधन करते रहने से तुम आप इसे समझ जाओगे। यहाँ सैन बैन में केवल इतना समझा देता हूँ:—

गुरू का निरख आंख और माथा।
सत का नूर रहे जिस साथा॥
अस चिन्ह देख करे पहिचान।
सत मत का जिस हिरदय ज्ञान॥
जब वह घट का भेद सुनावें।
नभ की ओर सुरत मन धावें॥

यह गुरू के लक्षण हैं। अब शिष्य के लक्षण सुनो:—

शिष्य का निरख आँख और माथा।
सत का नूर रहे जिस माथा॥
श्रद्धा प्रेम युत बचन सुनावे।
गुरु की युक्ती में चित्त लावे॥

छाज आकार सत्त को छाँटे।
कूढ़ा करकट दूर बहावे॥
जो शिष छन्नी के है समान।
नहीं लहै सतगुरू का ज्ञान॥
सार त्याग वह गहे असार।
सत नहिं धारे निपट गँवार॥

स्मरण रक्खो जिस गुरु या शिष्य का चौड़ा माथा न हो अथवा आंख का काना, कोतर, ऐंचाताना हो उसमें परमार्थ का रंग नहीं झलकता चाहे व्यवहारिक दृष्टि से वह कैसा ही चतुर और युक्ति बाला हो। मैंने तुम में यह चिन्ह देखे, तुम्हारी बातें सुनी, प्रसन्न हो गया और सच्चा अधिकारी समझ लिया।'

## छटा अध्याय

### दिल की दिल में दिल से दिल की राह है।

दो दिन व्यतीत हुये। दोनों दिन खुशी से बीत गये। अवस्था बदली। नया जन्म हुआ। कुल और गोत्र बदल गया। सुख और आनन्द के समय यह नहीं प्रतीत होता कि समय कैसे आता है और कैसे जाता है। सुदर्शन आज दुजन्मा हुआ। गुरू जिस दिन आत्मिक दीक्षा देता है उस दिन मनुष्य का नया जन्म होता है। और जब वह गुरू के भाव को स्वीकार कर लेता है तब गुरु के गोत्र में मिल जाता है। पहिला जन्म बाप के घर होता है और उस समय से वह मनुष्य की गणना में आता है। फिर उसका माँ बाप के गोत्र में नाम करण संस्कार होता है और यह बाप का दिया हुआ नाम जीवन

पर्यन्त फुरता रहता है। दूसरा जन्म गुरू के घर में होता है। यहां भी उसे नाम ही दिया जाता है और नाम करण संस्कार किया जाता है। रूप तो जैसा होता है वैसा ही रहता है नाम में अदल बदल होती है। वह व्यवहारी नाम था। यह परमार्थी नाम है। वह अनेक बार जगत् में नानात्व का साधक होता है। यह परमार्थिक जगत् में एकत्व बाद की ओर ले चलता है। यह इन दोनों में भेद है जिसकी समझ केवल किसी किसी मनुष्य को होती है और वही नाम रूप के जगत् में नाम रूप की महिमा समझने की सुयोग्यता को प्राप्त करते हैं।

तीसरा दिन आया। मुण्ड भूषणी को आज्ञा थी कि वह सुदर्शन को मन्दिर दिखाये और दोनों को इस आज्ञा से लाभ उठान का ख्याल था। सुबह के सत्संग से फुरसत मिली। लड़की सुदर्शन को त्रिकोणाकार मन्दिर में लाई। एक वह दिन था जब वह इसमें डरते हुये आया था और एक दिन आज जब उसे किसी प्रकार का भय नहीं है।

दोनों एक जगह बैठ गये। उसने कहा—'तू बड़ी सौभाग्यवती है।' वह बोली—'तुम बड़े भाग्यवान हो।'

दोनों मुस्कराये। मुण्ड भूषणी ने होठ हिलाये— पहिले तू, बीच में तुम और आखिर में फिर तू। यह क्या बात है? ऐसी जल्द जल्द पैतड़ा बदलना! क्या यह चंचल मन का दोष नहीं है?'

सुदर्शन मुस्कराया—

'आदि अन्त दोउ एक समान।
मध्य अवस्था नर लहे ज्ञान॥
प्रथम एक और अन्त में एक।
बीच में सूझे दशा अनेक॥

अदल बदल सब मध्य में होय।
इनको समझे बिरला कोय॥
मन चंचल है मन ही निश्चल।
मन ही में होती है हल चल॥
वार पार के बीच है मन।
उसी में युक्ति योग यतन॥
जो है सो है मन का खेल।
मन में दुख और मन में केल॥
बन्धन मुक्ति है मन की रीति।
मन में डाह और मन में प्रीति॥
मन के घाट से ऊँचे चढ़े।
तत्त त्वम का फल वह नर लहे॥'

वह हँसी—'अब तो तुम दून की लेने लगे।'

यह भी मुस्कराया—'जब एक से दो हो गये तो दून की क्यों न लें। एक तू और एक मैं।'

मुण्डभूषणी—'तू और मैं झगड़े की बातें हैं। इस संसार में जहाँ देखो तू मैं मेरा तेरा होता रहता है।'

सुदर्शन—'क्या तू इसे बुरा समझती है?'

मुण्डभूषणी—'बुरा भला नहीं! मैं समदर्शनी हूं। मेरी दृष्टि एक पर रहती है।'

सुदर्शन—'मेरी भी यही दशा है। मैं भी एक ही को चाहता हूं।'

मुण्डभूषणी—'वह एक कौन है?'

सुदर्शन—'तू!'

मुण्डभूषणी—'मैं?'

सुदर्शन—'हाँ, तू।'

मुण्डभूषणी—'मैं और तू का झगड़ा इस मंदिर में भी होने लगा। तुमने शायद यह दोहा नहीं सुना है!

मैं मैं बुरी बलाय है, सको तो निकसो भाग।
कहें कबीर कब लगे रहे, रुई लपेटी आग॥

सुदर्शन--'तू भूली हुई है। मैं 'मैं' 'मैं' नहीं कहता 'तू' 'तू' कहता हूँ। मेरा जवाब दोहे में यह है--

तू तू करता तू भया, मुझ में रही न हूं।
वारी तेरे नाम की, जित देखूँ तित तू॥

मुण्डभूषणी मुस्कराई—'जहाँ मैं हैं वहां तू नहीं है। जहां तू है वहाँ मैं कहा!'

जब मैं था तब गुरु नहीं, जब गुरु हैं मैं नाँह।
प्रेम गली अति सांकरी, ता में दो न समांय॥

सुदर्शन--'जहां 'मैं' है वहीं 'तू' रहता है और जहाँ 'तू' है वहां ही मैं रहता है। न 'मैं' बिना 'तू' न तू के बिना 'मैं'। क्या यह सच नहीं है?"

मुण्डभूषणी—'सच है। दोनों में सम्बन्ध है। सम्बन्ध उपेक्षा का है।'

सुदर्शन—'लेकिन यह दोनों दो अलग नहीं रहते मिल कर एक हो जाते हैं।'

मुण्डभूषणी—'इन्हें मिलाता कौन है?'

सुदर्शन—'ओ३म् तत् सत्! हरि ओ३म् तत् सत्। तत्त्वमसि। ओ३म् ही एक ऐसी शक्ति है जो मैं और तू को मिला कर दोनों के भेद को मिटा देती है और फिर यह दोनों मिले जुले हुये जीवन की सत्ता को आनन्ददायक बनाकर सुख मंगल और हर्ष का कौतुक दिखाते हैं। एक मैं, दूसरी तू, तीसरा ओ३म्। यह तीन पृथक पृथक अस्तित्व हैं और यह संसार उन्हीं का

खेल है।'

मुण्ड भूषणी—'यह संसार दुख का स्थल है। यहां सुख कैसा! तन धर सुखिया कोई न देखा जो देखा सो दुखिया हो।'

सुदर्शन—'यह दुख की जगह उसके लिये है जो ओ३म् से सम्बन्ध नहीं रखता और उसके आशय को न समझ कर उसका नहीं बनता।'

मुण्डभूषणी—'आज तो तुम गुरु की तरह बात कर रहे हो।'

सुदर्शन—'अब मैं गुरु मत हूँ। मन मत नहीं रहा। गुरु की तरह तो मुझे बात चीत करना ज्ञान ध्यान जताना ही है। अब मन मता को धक्का पहुँच गया। गुरुमता ने उसकी जगह ले ली क्योंकि मैंने ओ३म् का भेद जान लिया। अब वही रंग, वही ढंग रहेगा।'

मुण्डभूषणी ने बड़े आश्चर्य की दृष्टि से सुदर्शन को देखा। देर तक सोचती रही, फिर मौन वृति की मुहर को तोड़ दिया। "तुमने 'ओ३म्' को कैसे पाया?'

सुदर्शन—'गुरू ने दिया।'

मुण्डभूषणी—'गुरू ने कैसे दिया!'

सुदर्शन—दर्शन के रूप में दिया। मुझे दिखा दिया। मैंने ॐ को देख लिया। पहिले नाम का सुदर्शन था। अब काम का सुदर्शन हो गया।

मुण्डभूषणी—'यह 'ॐ' है क्या?'

सुदर्शन—'यह 'ओ३म्' ब्रह्म है। यह 'ओ३म्' वेद है यह 'ओ३म्' श्रुति है। यह ओ३म् प्रणव है। यह ओ३म् अ+ऊ+म् है।'

मुण्डभूषणी—'क्या मैं भी इसका दर्शन कर सकती हूँ?'

सुदर्शन--'सुदर्शन बनने की तुम्हें भी जरूरत पड़ेगी। सुदर्शन का अर्थ है अच्छी दृष्टि वाला। जब तक मनुष्य अच्छी दृष्टि वाला नहीं बनता तब तक 'ओ३म्' का दर्शन नहीं मिलता।'

मुण्डभूषणी—'पहिले मुझे मालूम भी हो ले कि यह 'ॐ' क्या है तब उसे देखूँ।'

सुदर्शन—'पहिले सुदर्शन बनलो तब 'ओ३म्' के दर्शन की इच्छा करो। जब आँख ही नहीं तब आदमी क्या देखेगा। पहिले दृष्टि, फिर दृश्य, पहिले कान फिर उसके लिये श्रुति (राग) पहिले जिभ्या फिर उसके लिये ऋग्वेद की ऋचा। क्या तू इसे नहीं समझती है?'

मुण्डभूषणी—'समझती हूँ तभी तो पूछ रही हूँ।'

सुदर्शन—'फिर सुन ले। यह 'ओ३म्' दृष्टि का दृश्य, मन का मन्तव्य, हृदय का संकेत, कानों की श्रुति, जिभ्या की ऋचा और अन्तःकरण का अन्तर भेद है।'

मुण्डभूषणी—'मैं इतने दिनों स्वामी जी की सेवा में रही, ओंकार के मन्दिर की पुजारी बनी, 'ओ३म्' 'ओ३म्' करती रही और नहीं समझा। तुम परसों आये हो, कल दीक्षा पाई और आज समझ गये।'

सुदर्शन—'इसका कारण यह है कि पहिले तुम को सुदर्शन नहीं मिला था। अब मिला। अब समझ जाओगी।'

मुण्डभूषणी—'तुम वाचक हो। बातें बनाना बहुत सीख गये हो। मैं वाचक ज्ञानी बनना नहीं चाहती।'

सुदर्शन—'पहिले वाच, फिर लक्ष, पहिले बात तब चीत—

ज्यों केले के पात में, पात पात में पात।
त्यों वक्ता की बात में, बात बात में बात॥

वाच न हो तो लक्ष क्या ! बात न हो क्या चीत ।
कान न हो तो क्या सुने, कोई 'ओ३म्' उद्गति ॥

मुण्डभूषणी—'जब समझ लिया तो समझाते क्यों नहीं। जब घट में है तो जुबान पर क्यों नहीं आता। जब तुम्हें सरस्वती प्राप्त हो गई तो फिर सरल रीति से प्रगट होकर दर्शन क्यों नहीं देती ! तुम तो केवल दृष्टि और दृश्य पर जोर दे रहे हो।'

सुदर्शन—'मन ऊँचा है। जिभ्या नीची है। आंख बीच की चीज है। मैंने बिचले अंग को स्वीकार किया है। मन मनन करता है, आँख देखती है, जुबान बोलती है। सोचना, देखना, बोलना तीनों ही विचार के प्रगट करने के साधन हैं। इसलिये मैं आँख की महिमा के गीत गाता रहता हूँ। मेरा नाम ही सुदर्शन है। जैसा नाम वैसा काम। आंख क्या है ? मन और जिभ्या के बीच की कड़ी है जो दोनों को मिलाकर काम लेती है। इसलिये मैं दृष्टि साधन पर जोर देता हूँ।'

मुण्डभूषणी—'इस दृष्टिसे 'ओ३म्' का क्या सम्बन्ध है ?'

सुदर्शन—'ओ३म् त्रिपुटी है-अ+उ+म। ओ३म् त्रिकुटी है—पुरुष+जीव+प्रकृति। ओ३म् त्रिकालिक है:—सृष्टि+स्थिति+प्रलय। ओ३म् त्रिदर्शना है:—दृष्टि+द्रष्टा+दृश्य। ॐ त्रिश्रोत्रा है:-श्रुति+श्रोत+श्रोता। ॐ विज्ञानक है:—ज्ञेय+ज्ञान+ज्ञाता। ॐ त्रिध्यायक है:—ध्येय+ध्यान+ध्याता। ॐ त्रिगुणात्मक है:—सत्+रज+तम्। यह उपेक्षिक शब्द हैं।

मुण्डभूषणी—'तुम बड़े समझदार आदमी हो।'

सुदर्शन—'क्योंकि मैं सुदर्शन हूं।'

मुण्डभूषणी—सुदर्शन हो तो सुवाणी क्यों नहीं बनते ? सुमन क्यों नहीं बन जाते ? सुदर्शन ही सुबाणी और सुमन होता है और सुमन ( अच्छा मन वाला ) और सुमन

( फूल ) है।'

सुदर्शन—'यह ॐ प्रेम है, भक्ति है। जो कुछ है यही है। यह सब की कुंजी है। इसके सिवा और कुछ नहीं है। न था, न हुआ न होगा।

प्रेम भाव एक चाहिये, भेस अनेक बनाय।
चाहे घर में बास कर, चाहे बन में जाय॥
जोगी गंगम सेबड़ा, सन्यासो दरवेश।
बिना प्रेम पहुँचे नहीं, दुर्लभ सतगुर देश॥

सुदर्शन ही में सुदृश्यता और सुमनता है।'

मुण्डभूषणी—और कुछ कहो।'

सुदर्शन—'पहिले तू मृणालिनी ( चमन का फूल ) थी। तेरा नाम ही मृणालिनी था। किसी ने गुरू के अर्पण किया। गुरू ने तुझे मुण्डभूषणी अर्थात् शिर के भूषण का नाम दिया। सुदर्शन ने आकर तेरा दर्शन किया। कमल की शोभा यही है कि देवताओं के सर पर चढ़े।'

फूल वही जो महेश चढ़ै,
और दृष्टि जो गुरु के रूप को देखे।
मन की शोभा तू यह समझ ले,
जो गुरु मत मन्तव्य को लेखे॥
कान जो अनहद नाद सुने
और हृदय जो तत्व के सार को पेखे।
साधु वही इस जग में सच्चा,
जो बाणी और बुद्धि कसौटी परेखे॥

आजा! मैं तुझे अपने मुण्ड का भूषण बनाऊँ।'

मुण्डभूषणी— 'तुमने मेरे पिछले नाम को किस से सुना?'

सुदर्शन हँसा:—

सूर छिपे अदरी बदरी,
और चन्द्र घटा जब नभ पर छाये।
सुन्दरि घूँघट लाख करे,
छिपती नहीं रूप को कैसे छिपाये।
मैं हूँ सुदर्शन आंख मिली,
नहिं देखूँ मैं कैसे आँख को पाये॥
दृष्टि खुली सब दृष्टि में आया,
यही दृष्टि सृष्टि है सब कोई गाये॥

मुझ से अधिक न पूछो। मैं सब कुछ जानता हूं। केवल तत्व की बात कहता हूं।'

मुण्डभूषणी—'यह तत्व क्या है?'

सुदर्शन—'तत्व दो शब्दों से बना है:—तद+त्व। तद का अर्थ है वह' और त्व का अर्थ है 'तू'। यह तत्व की स्पष्ट व्याख्या है। तत् + त्वम् + असि यह महा वाक्य है। तत्त्व मैं और तू हैं। अभी हम पृथक पृथक हैं इसलिये तत्व मसि का पाठ हो रहा है जब मिल बैठेंगे तब सोऽहं अर्थात् (सो=वह) +(अहं=मैं) बनेंगे। उस समय सोऽहमस्मि का पाठ होगा। जब यह मंजिल खतम हो जायगी, फिर क्या होगा? फिर दोनों मिलकर एक बनेंगे। उस समय अहंब्रह्मास्मि का पाठ आरंभ होगा। फिर सत् सत् सत् के सिवा और कुछ न रहेगा।

वाच सुना तब लक्ष लखा,
और तत्त्वमसी का पाठ किया।
लक्ष लखा तब आपको जाना,
अपने आपका ध्यान दिया॥
रूप स्वरूप अरूप को देखा,
कुछ न दिया न किसी से लिया।

ब्रह्म अखंडित व्याप रहा,
अहं ब्रह्म का अमृत घोल पिया ॥

मुण्डभूषणी—'खैर ! मैं मृणालिनी ( कमलिनी ) हूं तुम सुदर्शन हो। मृणालिनी भी फूल, सुदर्शन भी फूल और मजा यह कि कमलिनी और सुदर्शन दोनों सदृश हैं। भेद केवल इतना है कि कमलिनी पानी में रहती है और सुदर्शन जमीन में उगता है। पानी और मिट्टी की भी यहां उपेक्षा है। मिट्टी के घड़े के बिना पानी कहीं नहीं ठहर सकता है। मैं आब हूं तुम ताब हो। आब व ताब एक ही जगह रहते हैं। चलकर स्वामी जी से मेरी प्राप्ति की इच्छा प्रगट करो और इस वार्तालाप की जल्द समाप्ति हो।

# सातवाँ अध्याय

## सफलता

आया और काम बना लिया। काम की इच्छा की और सफलता पांव चूमने के लिये उपस्थित हो गई। इस संसार में ऐसे आदमी भी होते हैं जो जीवन पर्यन्त नाक रगड़ते रहते हैं और काम नहीं होता। साथ ही ऐसे लोग भी दिखाई देते हैं जो थोड़ी देर काम करते हैं और उनका काम फल दायक सिद्ध होता है। यह भाग्य है। भाग्य निर्भयता, दृढ़ता और चित्त की एकाग्रता को कहते हैं। इसके सिवा वह और कोई चीज नहीं है।

सुदर्शन और मुण्डभूषणी दोनों महन्त के पास आये।

महन्त ने पूछा—'इस समय कैसे आना हुआ ?'

मुण्डभूषणी ने जबाब दिया—'भगवन ! मैं ब्रह्मचारिणी रहना चाहती थी। आपने रोक दिया और साथ ही श्री मुख

से यह बात कही थी 'कि जब कोई सुयोग्य पुरुष आयेगा तेरे भाग्य का तारा चमक उठेगा। वह पुरुष यह है।'

महन्त मुस्कराया—'इतनी जल्दी फैसला कर लिया ?'

मुण्डभूषणी—फैसले में जल्दी नहीं की गई, दिन पक्ष, सप्ताह और महीने लगे हैं।'

महन्त को आश्चर्य हुआ।

मुण्डभूषणी ने आदि से अन्त तक का सारा वृतान्त कह सुनाया। यहाँ तक कि उसे सुदर्शन का एक एक प्रश्नोत्तर स्मरण था। सब को एक एक करके दुहरा दिया। थैले में एक दिन लड़के की लाश लाने तक का हाल नहीं छोड़ा और कई दिन तक थैलों में रेत भर लाने की बात भी कह डाली। यह काम केवल सुदर्शन की हार्दिक परीक्षा लेने के लिये किये गये थे। इसे भी ज्यों का त्यों सुना दिया।

महन्त ने आवाज दी—'कमलाकार ! यहां आओ।' और वह साधू जो सुदर्शन के स्वागत का प्रबन्ध करता था, आया।'

'कमलाकृत है ?'

'हाँ, भगवन् ! पढ़ रहा है।'

'उसे बुला लाओ।'

वह भी आ गया।

महन्त ने सुदर्शन से कहा--'यह वही बोरे की लाश है जो मुण्डभूषणी गंगा के किनारे से उठा लाई थी। उसे इसमें कुछ जीवन के लक्षण प्रतीत हुये थे। मानव प्रेम के प्रभाव से यह उसे बोरे में बन्द करके लाई। यह जीता है। माँ बाप का पता मिल गया है। यह कुछ दिनों पीछे अपने घर चला जायेगा। हड्डियों और खोपड़ियों की ढेर केवल अजनबी आदमियों के डराने के लिये इकट्ठी की गई थीं। जिसमें कोई मनुष्य कन्दरा की राह से मंदिर में न आ जा सके। इसके सिवा और

कोई बात नहीं थी।'

सुदर्शन की संतुष्टि होगई। वह मुण्डभूषणी से पूछने ही को था मगर अवसर नहीं मिला था। अब संतुष्ट होकर चुप हो रहा।

महन्त ने कहा—'मुण्डभूषणी ने बुरी तरह तुम्हारी परीक्षा ली और तुम पास हो गये।'

सुदर्शन ने प्रसन्नता प्रगट की। मुण्डभूषणी ने महन्त के पाँव पर गिर कर अपने अपराध की क्षमा मांगी।

महन्त—'जिस काम में ईश्वर का हाथ हो मैं उस पर आक्षेप नहीं कर सकता परन्तु आगे के जीवन में तुम ऐसा काम कभी न करना। बहुधा मनुष्य धोका देकर आप धोका खा जाता है और संशय उत्पन्न करके आप अपने लिये हानिकारक बनता है।'

मुण्डभूषणी—'अब मैं ऐसा अनुचित काम फिर कभी न करूँगी।'

महन्त—'मेरे सर का बोझ उतर गया। सर हल्का हो गया। लड़की का ग्राहक आ गया। अब वह जाने और उसका काम जाने।'

सुदर्शन—'यह मेरे मुण्ड का भूषण बनेगी और मैं इस भूषण को आदर सत्कार सहित सँवारूँ और सिंगारुँगा।'

महन्त—'जल्दी न करो।'

और उसने कमलाकार को बुलाया—'गाँव में जाओ और इसी समय ठाकुर भीमसिंह को बुला लाओ। बहुत ही आवश्यक काम है।'

वह चला गया। महन्त उसके लौटने तक चुपका बैठा रहा। यह दोनों भी चुपचाप थे। किसी ने कोई बातचीत नहीं की। गांव दूर नहीं था। पाँच ही सात फरलांग की दूरी पर था। भीमसिंह साधु के साथ आ गया।

महन्त ने उसे प्रेम से बिठाया—'भीमसिंह ! तुम्हें मृणालिनी के नाम से चिढ़ है। मैं इसे मन्दिर में रखना नहीं चाहता था। तुम इसे जबरदस्ती फेंक गये। मैं क्या करता ! गले पड़ा ढोल बजाये सिद्ध ! इसे पाला पोसा, पढ़ाया, लिखाया, छोटी से बड़ी किया। इससे मुझे कष्ट उठाना पड़ा। अब यह सयानी हो गयी है और अपने भले बुरे को भली भांति समझती है। यह नव युवक सुदर्शनसिंह इलाहाबाद के किसी बड़े घराने के राजपूत का लड़का है। इसने बी० ए० पास किया है और बड़ा होनहार प्रतीत होता है। यह इसके साथ विवाह करने का इच्छुक है। मुझे तो कोई इन्कार नहीं है। ऐसा वर रोज रोज नहीं मिलता। तुम कहो क्या कहते हो ?'

भीमसिंह—'लड़की न मेरी है न उस पर मेरा दावा है। यह आप जानते हैं कि लड़की आपकी है। मैं कुछ नहीं कहता।'

महन्त ने उसी समय सोचे विचारे बिना मुण्डभूषणी का हाथ सुदर्शन के हाथ में देकर कहा—'जाओ ! आज से तुम स्त्री पुरुष हो। मैं और भीमसिंह और परमेश्वर साक्षी हैं। जाओ फूलो फलो, दूध नहाओ और पूतों फलो। खुश रहो। यह सच्चे दिल का सच्चा आशीर्वाद है। भीमसिंह ! अगर तुम चाहो तो लड़की को लेजा कर अपने घर उसका शास्त्रोक्त विवाह कर दो।'

भीमसिंह—'मैं यह कदापि न करूँगा। हाथी के मुँह से बाहर निकले हुए दाँत फिर भीतर नहीं जाते। लड़की आपकी थी। जिसे आपने चाहा दे दिया। यही काफी है।'

फिर भीमसिंह ने सुदर्शन से पूछा—'तुम्हारे बाप का क्या नाम है ?'

सुदर्शन—'दलथम्मन सिंह।'

भीमसिंह को आश्चर्य हुआ। वह दलथम्मन सिंह को

जानता था। यह इलाहाबाद का रईस था। 'क्या तुम वही सुदर्शनसिंह हो जिसका दोस्त हमारे गांव का लक्ष्मणसिंह है? तुम्हारी बदौलत अब वह बड़ा आदमी हो गया। जमीन पर पाँव नहीं पड़ता। इतराता फिरता है।'

सुदर्शन—'हाँ! मैं वही सुदर्शन हूँ। लक्ष्मणसिंह मेरा मित्र है। मैंने उसके साथ कोई उपकार का काम नहीं किया।'

भीमसिंह—'किया या नहीं किया, इसे तुम जानो या वह जाने लेकिन एक बात कहे देता हूँ चाहे भले ही बुरा मान जाओ। तुम ने आस्तीन में सांप पाला है और वह ऐसा जहरीला है जिसके डसने का न मन्त्र है न इलाज है।'

सुदर्शन हँसा—'मैं क्यों बुरा मानने लगा। अपनी अपनी राय अपनी अपनी समझ।'

भीमसिंह—'अभी बच्चे हो! ऐसा न हो पीछे पछताना पड़े। मैं इसलिये नहीं कहता कि तुम मृणालिनी के पति होगे। वह मेरी लड़की भी नहीं रही। वह महन्त जी की सन्तान है। मुँह आई बात कह दी। वह बड़े बड़े मनसूबे बांध रहा है। पता नहीं किस धुन में है। परसों आया पाँच दस बदमाश उसके साथ थे। वह तुम्हारे रुपये को पानी और ठीकरे की तरह बखेर रहा है। मैंने सुना है सुना दिया। आगे तुम जानो, तुम्हारा काम जाने।'

महन्त मुस्कराया क्योंकि वह इस मूढ़ और गँवार राजपूत के रंग ढंग को जानता था।

सुदर्शन भी हँसा—'आप ने मुझ पर बड़ी दया की जो चौकन्ना रहने की शिक्षा दी। मैं इसका ध्यान रक्खूँगा।'

उसे आश्चर्य था कि ऐसे असभ्य पुरुष के यहाँ मुण्डभूषणी जैसी सूक्ष्म स्वभाव वाली लड़की कैसे उत्पन्न हो गई।

मुंडभूषणी चुपचाप बाप का मुँह देखती रही। वह जानती थी कि यह बड़ा मूढ़ और गँवार क्षत्री है।

भीमसिंह उठा और महन्त को सर झुकाकर नमस्कार किया। मुण्डभूषणी की ओर तो उसने दृष्टि तक नहीं की। यह मनुष्य चाहे जैसा रहा हो परन्तु बड़ा निष्काम और सच्चा सीधा सादा आदमी था। जिस बात पर अड़ा अड़ गया। फिर कोई शक्ति वहां से उसका पांव नहीं उखेड़ सकती थी। यह अकड़ मुण्डभूषणी में भी थी। भेद यह था कि वह स्थूल था और यह सूक्ष्म थी। महन्त की संगत और शिक्षा का लाभ न मिला होता तो वह भी ऐसी ही होती।

भीमसिंह की पीठ फिरते ही महन्त ने सुदर्शन सिंह से पूछा—'यहां से कब जाओगे ?'

सुदर्शन इस प्रश्न के लिये तैयार नहीं था क्योंकि यह प्रश्न अचानक किया गया था।

उसने उत्तर दिया 'जब आपकी आज्ञा हो।'

महन्त—'मैं चाहता हूँ तुम आज अभी यहां से चले जाओ। मैं किसी की न निन्दा करता हूँ न करना चाहता हूँ। न यह मेरा स्वभाव है। यहां रहना तुम्हारे लिये अच्छा नहीं। भीमसिंह तुम को चौकन्ना कर गया है।'

सुदर्शन—'आप की दया से मैं अभय हूँ। मुझे किसी का खटका नहीं है।'

महन्त—'तुम नहीं जानते हो। यह भदोही का इलाका है। भाई भाई का द्रोही है। भदोही भाई द्रोही का अपभ्रंश है। यहां हमेशा हत्या के मुकदमे होते रहते हैं और पुलिस तक को घातकों का पता नहीं लगता।'

सुदर्शन—'क्या आप भी ऐसा ही मानते हैं ?'

महन्त—'मानना कैसा ! मैं रोज सुना करता हूं। भदोही के रहने वालों से किसी का पाला न पड़े। यह लोग बड़े कपटी और निर्दयी होते हैं।'

सुदर्शन—'तो मैं आज ही चला जाऊँगा। अभी गाड़ी का समय है।'

और उसने जेब से घड़ी निकाल कर देखी।

महन्त—'तुम चले जाओ। अगर तुम्हारी माता जीवित है तो मुण्डभूषणी को उसकी रक्षा में रखना। जब तक विवाह न हो ले यह घर के बाहर न निकलने पाये।'

सुदर्शन महन्त की बातों को समझ नहीं सका क्योंकि उसके अल्लहड़पने के दिन थे।

जल्द जल्द सामान बाँधा। महन्त से विदा हुआ। चलते समय कुछ नकद भेंट किया। मुण्डभूषणी को साथ लिया। नाव पर बैठा, स्टेशन पर पहुंचा। रेल आई, टिकट खरीदा। दोनों सवार हुए, इलाहाबाद आये, मोटर की सवारी की, अतर सुइया पहुँचे। सुदर्शन ने मुण्डभूषणी का सर माँ की गोद में डालकर कहा—'यह तुम्हारी पुत्र बधू है। इसकी रक्षा करो।'

माँ चकित हुई। उसे क्या पता कि बेटे ने कब शादी की, कैसे की, किसके यहां की। लड़की कौन है ! वह बेचारी क्या जानती थी। हां लड़की बहुत सुन्दरी और सुशीला जँची। वह उसका रूप देखकर मोहित हो गई।

यह तो उसी समय मोटर पर बैठकर अपने बँगले में चला आया। शाम को जब दलथम्मन सिंह ने अपनी स्त्री से सुना कि बेटा बहू लाया है तो बहुत बिगड़ा। मुण्डभूषणी शरमीली लड़की नहीं थी। स्वतंत्र स्वभाव वाली थी। आपही उससे

नम्रता से बोली —

'पिता जी ! मेरी सरलता की ओर दृष्टि रहे। अगर मेरे घर आने से आपको दुख हुआ तो मुझ से अधिक अभागी और कौन होगी। पुत्र बहू न सही, राजपूत की लड़की हूँ। मुझे लड़की की नजर से देखिये। समय पर आप अपने बेटे से निबट लीजियेगा। ऐसा न हो कि मेरे जीवन की भूमिका की नीव कमजोर पड़े। मैं निर्दोष हूँ।'

दलथम्मन इन सीधी सादी बातों को सुनकर दंग रह गया। समझा यह पढ़ी लिखी लड़की है, बेटे ने उसे आप ही पसन्द किया है। अँग्रेजी सभ्यता के अनुसार बेटे की शिक्षा का यह पहिला परिणाम है। मुण्डभूषणी को सांत्वना दी और चुप हो रहा।

॥ तीसरा भाग समाप्त ॥

नाविल

# चौथा भाग

## पहिला अध्याय

### दलथम्मन और सुदर्शन

नौ बजे रात को सुदर्शनसिंह घर पर आया। सीधे बाप की बैठक में चला गया। नमस्कार किया। बाप ने नमस्कार का कोई उत्तर नहीं दिया। यह समझ गया कि क्रोध में हैं। आप भी चुपचाप बैठा रहा। दो चार मिनट पीछे दलथम्मनसिंह ने पूछा—'तुमने महा अनुचित काम किया है।'

सुदर्शनसिंह—'अपने बाप का सच्चा बेटा कभी अनुचित काम नहीं करता।'

दलथम्मनसिंह—'तुमने सम्मति तक नहीं ली और विवाह कर लिया। यह अनुचित भी है और ढिटाई भी है और दोनों क्षमा के योग्य नहीं हैं।'

सुदर्शन—'मैं दोनों अपराध से निर्दोष हूँ और जो कुछ किया है क्षमा के योग्य है।'

दलथम्मन—'चोर बड़ा है सूरमा, धरे हाथ में दीप।'
सुदर्शन - 'चोर सूरमा नहीं होता। सूरमा कोई और है।'
दलथम्मन—'तो फिर मूर्खता है।'

सुदर्शन –'मूर्खता भी नहीं है।'

दलथम्मन—'तो फिर क्या है ?'

सुदर्शन—'वीर भाव की उमंग। प्रकृति का विजय करने का साहस।'

दलथम्मन खिसियाना हो गया—'मैं जानता हूं पढ़ा लिखा कर मैंने तुझे अपने पांव की कुल्हाड़ी और कुल का घातक बनाया।'

सुदर्शन—'सुदर्शन न कुल की कुल्हाड़ी है न कुल का घातक है। वह जब होगा कुल का पालक ही होगा।'

दलथम्मन--'फिर यह तू ने क्या किया ? क्यों मेरी सम्मति के विरुद्ध विवाह कर लिया ?'

सुदर्शन—'आपने कभी कोई सम्मति नहीं दी थी, इसलिये इन शब्दों का प्रयोग उचित नहीं है। अगर आपने कोई आज्ञा दी होती और मैं उसके विरुद्ध होता तब आप मुझे अपराधी कह सकते थे। और जब आज्ञा ही न हो तो क्यों दोष लगाया जाता है ?'

दलथम्मन—'फिर तू ने जबरदस्ती की।'

सुदर्शन—'आप जो कहें ठीक है परन्तु जहाँ सम्मति और आज्ञा का अभाव हो वहाँ जबरदस्ती का दोष लगाना अच्छा नहीं है।'

दलथम्मन–'तूने बुरा किया। मैं इस विचार में था कि किसी अच्छे घर में तेरी शादी करता। कई राजे अपनी लड़की खुशी से देते।'

सुदर्शन–'खुशी मुझे मिलनी थी या किसी और को ? जन्म जन्म का संयोग, जीवन पर्यन्त का साथ ! मैंने अपनी निज खुशी को मुख्य समझा और आपको मेरी खुशी में खुश होना चाहिये।'

दलथम्मन—'तू भी खुश होता और मैं भी खुश होता। दोनों साथ साथ खुश होते।'

सुदर्शन—मैं तो खुश हूँ। जब आपको पता लग जायेगा, आप मुझसे कहीं अधिक खुश होंगे।'

छाँटा है वह रतन, कि नहीं जिसका मोल है।
है वह अमोल, साथ ही सब विधि सुडोल है॥

दलथम्मन—'तू बहुत स्वतंत्रता लेने लगा। इतनी स्वतंत्रता भी अच्छी नहीं है।'

सुदर्शन—'स्वतंत्रता पहिला उत्तराधिकार है जो सुदर्शन को उसके बाप की ओर से प्रदान हुआ है और उसने इस स्वतंत्रता का अनुचित लाभ नहीं उठाया।'

दलथम्मन या तो क्रोध से लाल पीला हो रहा था या इन बातों को सुन कर खिलखिला कर हँस पड़ा—'सच है जैसा किया मेरे आगे आया। जैसी करनी वैसी भरनी। साधू का क्रोध उसकी झोली पर! स्वतंत्रता क्या दी कि उसका पहिला वार मेरे ही ऊपर!'

सुदर्शन समझ गया कि क्रोध की अग्नि ठण्डी पड़ गई। 'समय आयेगा जब आप मेरी सराहना करेंगे। मैंने कोई अनुचित काम नहीं किया।'

दलथम्मन—'यह लड़की है कौन? और तूने उसमें ऐसे क्या गुण देखे कि राल टपक पड़ी? इस मूर्खता का कहीं ठिकाना भी है!'

सुदर्शन—यह जाति की राजपूतनी है और भीमसिंह इंटहरा के जमीदार की लड़की है। पढ़ी लिखी, उच्च भाव, श्रेष्ठ बुद्धि, भोली भाली, पंडिता, दार्शनिक विषय की समझने वाली, अँग्रेजी, फारसी और संस्कृत की ज्ञाता! सैकड़ों एम०

ए०—बी० ए० खड़े कर दीजिये, कोई उसके पासंग को न पहुँचेगा !'

दलथम्मन ने जोर का कहकहा लगाया—'क्या कोष में और विशेषणा तुझे नहीं मिले !'

सुदर्शन—'पिता जी ! बात तो ऐसी ही है। इतनी अच्छी लड़की है कि स्वर्ग लोक की देवी और देवता तक उसे देखकर कानों पर हाथ रखते हैं।'

दलथम्मन—'लड़के ! क्या कहीं बावला हो गया है ! लड़की न ठहरी ब्रह्मा विष्णु महेश बन गई !'

सुदर्शन—'वह मेरी लक्ष्मी, सरस्वती और पार्वती है।'

दलथम्मन मुसकराया। स्वतंत्रता की हद हो चुकी। बेटे ने बाप के सामने कब ऐसी बातें की होंगी और कब किसी बाप ने अपने बेटे के मुँह से ऐसी बेतुकी बातें सुनी होंगी ! वाह सपूत बेटे तूने खूब किया ! मालुम होता है इसमें भी लक्ष्मण-सिंह की चाल रही होगी। वह तेरा गहरा मित्र बना फिरता है और तुझे खबर ही नहीं कि वह किस धुन में है।'

सुदर्शन—'इस काम में लक्ष्मण मेरा साथी नहीं है। मैंने यह काम किया है। उसे पता तक न होगा कि मृणालिनी घर में आ गई है।'

दलथम्मन—'नाम तो बड़ा सुन्दर है।'

सुदर्शन—'नाम रूप गुण की दृष्टि से वह सर्व प्रकार सुन्दर ही सुन्दर है।'

दलथम्मन—तू उसे देवी समझता है। बहुओं को उनके ससुर नहीं देखते। तू स्वतंत्र है तेरी स्त्री भी ऐसी होगी। बुला तो सही मैं भी तेरी बहू का दर्शन कर लूँ।'

सुदर्शन उठा, घर में गया। मां से कहा—'तुझे पिता जी याद कर रहे हैं, अपनी बहू को भी लेती जा।'

सास और बहू दोनों ही दोनों को फिक्र थी। सास को त अपने पति का भय था कि न मालुम क्या व्यवहार हो! औ बहू स्वतंत्रता की जगह से बन्धन के स्थान में आई थी। उसे तो दुखी होना ही था लेकिन आज्ञा का पालन करना भी तो जरूरी था। दोनों उठीं। सास बहू का हाथ पकड़े हुए ले गई। पति के सामने खड़ा कर दिया। उसने उसे बिजली की रोशनी में सर से पांव तक गहरी दृष्टि से देखा। सुन्दरता भी आखिर एक प्रकार का जादू होता है। वह भौचक्का हो रहा। देर के बाद बोला—'सुदर्शन कहता है तू उसकी देवी है।'

मृणालिनी ने सर झुकाकर जबाव दिया—मैं उनकी दासी हूँ।'

दलथम्मन—'और मेरी कौन है?'

मृणालिनी—'आपकी और माता जी की सेवा करने वाली लड़की हूं।'

दलथम्मन—'सुदर्शन कहता है तू बड़ी गुण शील वाली लड़की है।'

मृणालिनी—'पत्थर के टुकड़े पर जब सूर्य की बार बार दृष्टि पड़ती है तब वह लाल या हीरा हो जाता है। हीरे जवाहिर की गढ़त सूर्य्य ही की दृष्टि से होती है। प्रशंसा सूर्य्य की है पत्थर की नहीं है।'

दलथम्मन को विश्वास हो गया कि लड़की सुशील और बड़ी समझदार है। पूछा—'बाप के घर से आई। मेरे लिये क्या लाई? मेरा भी तो हक है।'

मृणालिनी ने दबे और शरमीले स्वर में उत्तर दिया—'सच्ची सेवकाई का भाव, श्रद्धा, विश्वास, प्रेम, आज्ञा पालन करने की प्रतिज्ञा! यह भेंट हैं जो मैं आपके लिये लाई हूं?'

दलथम्मन—'क्या यह काफी हैं ?'

मृणालिनी—'अगर यह काफी नहीं हैं तो फिर कोष बनाने वालों ने वृथा श्रम किया है। मेरी समझ में इस भेंट से बढ़कर और कोई भेंट नहीं है।'

दलथम्मन ने समझ लिया कि लड़की पढ़ी लिखी और सभ्य है। वह उठा—'बेटी! तेरे आने से मैं बहुत प्रसन्न हुआ। मेरी इच्छा थी कि सुदर्शन की शादी किसी राजा की लड़की से करता। तू सबसे अच्छी है।'

मृणालिनी ने तीन बार आँचल से जमीन को छूकर ससुर को धन्यवाद दिया और फिर सांस के पाँव छुये। उसने यह बातें कहां सीखीं वही जानती होगी।

दलथम्मन ने स्त्री से कहा—'बहू तुम को मुबारिक हो। यह सचमुच लक्ष्मी है। बेटे ने यह काम चतुराई से किया है। मैं उस पर यों ही क्रोधित हो गया था. जाओ इसे खुश रक्खो।'

मृणालिनी ने हाथ बांधकर नमस्कार किया। सास की जान में जान आई। सर पर आई हुई बला टल गई। दोनों जनानखाने में लौट गईं।

सुदर्शन उनके जाते ही बाप के पास बैठ गया।

दलथम्मन ने कहा—'बेटे! मैं भूला हुआ था। तूने अपने लिये बहुत अच्छा मोती चुना है। तेरा चुनाव अद्वितीय है। यह हीरे का टुकड़ा कैसे तेरे हाथ लगा ?'

सुदर्शन—'इसका वृतान्त फिर कभी सुनाऊँगा। इसका पालन पोषण स्वतंत्रता के खुले हुए स्थल में हुआ है। अभी तक माया ने अपना प्रभाव नहीं डाला है। सरल स्वभाव! बच्चों जैसी वृत्ति है।'

दलथम्मन—'मैंने तो उसे बहुत सभ्य, प्रिय भाषणी और

सुन्दरता में निखरी हुई पाया। यहाँ तू भूल पर है। हाँ! उसने गँवार लड़कियों की तरह घूँघट नहीं निकाला था।'

सुदर्शन—'आप जितनी बार इसे देखेंगे हर बार उभरते और निखरते ही देखेंगे। मुझे पूरा पूरा विश्वास है।'

दलथम्मन—'खैर! जो तूने किया अच्छा ही किया! स्त्री की इतनी प्रशंसा अब किसी के सामने न करना। यह महा अनुचित बात है।'

सुदर्शन—'निस्संदेह! मैं इसे ठीक समझता हूं। अब ऐसा न करूँगा। क्या करूँ! जरूरत ने आपके सामने मुँह खुलवा दिया।'

दलथम्मन—'तेरा मित्र लक्ष्मण कहां है? मैंने इतना तो सुना था कि वह तुझे इंटहरा ले गया है। क्या वह भी तेरे साथ था?'

सुदर्शन—'नहीं! वह मुझे मृणालिनी के यहाँ पहुँचा कर उल्टे पांव चला आया। कल बुलाकर मिलूँगा।'

दलथम्मन—'बेटे! वह बड़ा सिद्धांतहीन आदमी है। उससे बचकर रहने ही में भलाई है।'

सुदर्शन—'कैसे?'

दलथम्मन—'बडी शोहरत है कि तेरे नाम से उसने बैंकों में बहुत चैक भेजे और रुपया वसूल किया। कहाँ और कैसे खर्च करता है वह कोई नहीं जानता। तेरे मित्र सुजानसिंह और रूपसिंह कल मुझसे मिलने आये थे। वह भी यही बातें हुना रहे थे।'

सुदर्शन—'चैकों पर तो मैंने ही दस्तखत किये थे। इमारत का काम छिड़ा हुआ है। रुपये की जरूरत हर समय रहती है। लोग लक्ष्मण से द्वेष रखकर उसकी शिकायत करते हैं। मैं उसमें कोई ऐब नहीं पाता। मुझे उस पर विश्वास है।'

दलथम्मन—'अगर तुझे विश्वास है तो मुझे भी विश्वास होना चाहिये लेकिन सबकी राय में वह तुझे धोका दे रहा है।'

सुदर्शन—'लोग जानते ही क्या हैं!'

## दूसरा अध्याय

### गुत्थियां

लक्ष्मणसिंह दूसरे ही दिन सुदर्शनसिंह से बँगले पर मिला।

'कहो! काम कर लिया?'

'क्यों! करता क्यों नहीं, काम ही के लिये तो गया था। तुम ऐसे बगटुट भागे कि पीछे फिरकर भी नहीं देखा।'

'करता क्या? इसके सिवा तदबीर भी क्या थी! वादा भी पहुंचाने ही का था, पहुंचा दिया। घर गया और घर से फिर इलाहाबाद आया। कहो! क्या काम हुआ?'

'मुण्डभूषणी घर में आ गई। शादी हो गई। मैं पति वह पत्नी।'

'शादी कब हुई?'

'इंटहरा जाने पर तीसरे दिन।'

'किसने शादी कराई?'

'महन्त ने।'

'क्या भीमसिंह ने कुछ चीं चपड़ नहीं किया?'

'नहीं! वह भी आया था और शादी में सम्मिलित हुआ था।'

'वह तो निरा निखट्टू आदमी है।'

'लेकिन है बात का धनी! प्रण का पक्का! अपनी धुन का सच्चा!'

'और तुम्हारे बाप ने उसे बहू स्वीकार कर लिया?'

'क्यों न स्वीकार करते ! पहिले तो बहुत गर्म हुये थे लेकिन जब मुण्डभूषणी से बातचीत की तो ठण्डे पड़ गये।'

'मुण्डभूषणी कहां है ?'

'मेरे घर में माता जी के पास।'

'यार ! तुम भाग्यशाली हो। जहां भाग्य सहायता करता है वहाँ आदमी के सारे काम बन जाते हैं।'

'मैं तुमसे पहिले ही कह चुका था कि बिना काम सिद्ध किये न फिरूँगा। तुमको पहिला मौका दे दिया गया था। तुम फेल हो गये और मैं परीक्षा में पास हो गया।'

यह अभी बातचीत कर रहे थे कि सुजानसिंह और रूपसिंह भी आ गये। उन्हें देखते ही लक्ष्मण का मुँह पीला पड़ गया।'

सुजान– हमने सुना है तुम ने इंटहरा जाकर शादी की है।'

'सच है झूठी खबर नहीं है।'

सुजान—'और यारों को पता भी नहीं !'

सुदर्शन—'कुछ ऐसा ही अवसर था।'

रूपसिंह—'क्या रुपया देकर शादी की ? रूपनाथ गुरु और सब चेला। बापू भला न भैया, सबसे भला रुपैया।'

पैसे का सब जहान में, नकश वो नगीन हैं।
पैसे न हों तो कोड़ी के, फिर तीन तीन हैं॥

सुदर्शन—'एक पैसा भी खर्च नहीं हुआ।'

सुजान—'अरे ! यह तुम कहते क्या हो ! बैंकों में चैक गये। हजारों रुपये निकाले गये। रुपया न हुआ ठीकरी हुई ! एक मुट्ठी इधर फेंको एक मुट्ठी उधर। अलल्ले तलल्ले खर्च किया। क्या कहीं दीवाला निकालने की तो नहीं सूझी है !'

सुदर्शन हँसा, लक्ष्मण सिंह का मुँह और भी पीला पड़ गया।

रूपसिंह—'और तो जैसा है वैसा रहे परन्तु तुमने जाल क्यों बनाया ?'

सुदर्शन—'मैं और जाल बनाऊँ ! बात क्या है ? होश की दवा करो !'

सुजान—'बच्चे बनते हो ! घड़ी दो में मुरलिया बाजेगी !'

सुदर्शन—'कुछ साफ साफ कहो तो मैं समझूँ भी।'

रूपसिंह—'साफ साफ क्या कहलवाते हो ? मैं इलाहाबाद बैंक में रुपया लेने गया था। मुझसे कहा गया कि अभी कल तुम्हारा आदमी रुपया ले गया है। पूछने गछने पर पता लगा कि वह तुम्हारा आदमी ही था। मैं चुपचाप चला आया। मेरा रुपया और तुम्हारा आदमी बिना मेरी सम्मति के रुपया ले जाये यह बात मेरी समझ में नहीं आई। तुमसे पूछने पर टाल रक्खा है। चैक देखा। उस पर मेरा जाली दस्तखत बना हुआ है।'

सुदर्शन—'मैं आज ही पता लगाऊँगा।'

सुजान—'मेरे साथ भी तो यही सलूक हुआ। मेरा रुपया भी उसी दिन बैंक से निकाला गया है और पता नहीं वैसे घरों से चैक चुराये और कैसे दस्तखत बनाये !'

सुदर्शन—'कोई बात समझ में नहीं आती।'

रूपसिंह—'जल्दी करो ! अपनी जल्द खबर लो। हमको रुपये पैसे की इतनी चिन्ता नहीं है लेकिन मुँह पर आई बात नहीं रहती। आफत आयगी तो तुम पर आयेगी। जाल के मुकदमे बनेंगे। हम तो साफ मुकर जायेंगे।'

सुदर्शन—'हैरानी है ! क्या सुजान के रुपये भी मेरा आदमी

लाया था ?'

रूपसिंह—'हाँ जी, हाँ ! तुम्हारा नौकर ! बंगले का खानसामां ! उसके सिवा और कोई नहीं है। चैक पर उसका दस्तखत और अंगूठे का निशान बना हुआ है। अभी तक मैंने पुलिस में रपट नहीं लिखवाई। तुम से पूँछना था।'

सुदर्शन—'ईश्वर जाने क्या भेद है ! कोई बात समझ में नहीं आती। लक्ष्मण ! तुम कुछ बता सकते हो यह क्या मामला है ?'

लक्ष्मण—'मुझे क्या खबर है ?'

तीनों दोस्त घबरा गये। लक्ष्मण ने अपने चित्त की वृत्ति की रोक थाम कर रक्खी थी। सुजान और रूप की दृष्टि उस पर नहीं थी। यह सुदर्शनसिंह को ही कह रहे थे लेकिन कन-अँखियों से दोनों उसे देख रहे थे। इससे न कुछ पूछगछ हुई न उसने कुछ जबाव ही दिया। इस विचार में था कि कोई बहाना मिले और वहां से खिसके। सुबह के नौ बजने में देर थी। दफ्तर का बहाना भी नहीं चल सकता था। क्या करता। चुपचाप बैठा रहा। टस से मस नहीं की लेकिन उसका मन अन्दर ही अन्दर चुटकियाँ लेता रहा होगा और उसे निश्चय हो गया कि अब भांडा फूटने का समय निकट आ गया।

सुजान ने सुदर्शन से पूछा—'तुमने हमारे चैकों पर दस्तखत तो नहीं किये थे। इससे तुमको इ·कार है ?'

सुदर्शन—'तुम मेरे दोस्त हो इसलिये निर्भय होकर ऐसा प्रश्न कर रहे हो। कोई दूसरा होता तो उसे ऐसी हिम्मत न होती।'

रूपसिंह--'दोस्त न होते तो हमको कुत्ते ने नहीं काटा था जो तुम्हारे पास दौड़े आते। केवल तुम्हारी भलाई के लिए यह प्रश्न किए जा रहे हैं।'

सुदर्शन--'मैं समझता हूँ। अब मैं मुलजिम की तलाश में लगूँगा जिसने मेरे जाली दस्तखत बनाकर तुम लोगों के रुपये वसूल किए हैं।'

रूपसिंह--'ऐसा करना ही पड़ेगा नहीं तो लेने के देने पड़ेंगे।'

सुदर्शन चुप रहा। आज महीनों से लोग उसे समझाते चले आ रहे थे कि लक्ष्मण से बचकर रहना। उसने किसी की न सुनी और मामला यहाँ तक आ पहुँचा। वह सोचने लगा कि क्या किया जाए। चुप रहने का कारण यह था। लक्ष्मण से उनके सामने पूछ नहीं सकता था और साथ ही उसे यह आशा भी नहीं थी कि वह सन्तोष जनक उत्तर दे सकेगा।'

सुजानसिंह ने कहा--'भाई सुदर्शन! बहुत बड़ी आफत आ गई। तुम अनसमझ और अल्लहड़ हो। अभी तक तो तुम्हें हम कुछ और समझते थे। अब विचार बदलता जा रहा है।'

सुदर्शन--'तो तुम मुझे जालसाज समझते हो?'

सुजान--'ईश्वर क्षमा करे! हम मरते मरते भी तुम्हें ऐसा न समझेंगे न ऐसी बात मुँह से निकालेंगे। यह किसी बड़े धोखेबाज का काम है। उसने तुम्हारे भोलेपन का अनुचित लाभ उठाया है। उसका पता लगाना चाहिये।'

सुदर्शन के जी में आया कि लक्ष्मण से फिर कुछ पूछे। उसी समय उसके नौकर ने एक तार लाकर दिया। इसने अपना हस्ताक्षर करके रसीद देने के बहाने उसे बाहर भेजा। तार का लिफाफा खोलकर पढ़ा। लिखा हुआ था:--

'नर मांस भक्षण का मुकदमा जिला भदोही के कलक्टर के इजलास में दायर है। जमानत नहीं ली गई। ८ तारीख की पेशी है।'

दुख और आपत्ति की हद हो गई। इस बार सुदर्शन की सूरत का भी रंग उड़ गया। दोस्तों ने पूछा—'क्या बात है ?'

इसने तार उन्हें दे दिया मगर ये क्या समझ सकते थे ! यदि समझा भी होगा तो बड़ा संशय जनक रहा होगा।

सुदर्शन ने आप ही कहा—'यह तार इंटहरा के ओंकार-नाथ मन्दिर की ओर से आया है। वहां के महन्त पर किसी ने नर माँस खाने का मुकदमा चलाया है। मुदई सरकार है।

लक्ष्मण पर भी तार की इस खबर का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

सुजान बोल उठा—'मुझे याद आ गया। तुमने पहिले किसी एक लड़की का जिक्र किया था जो गंगा से मुरदा लाश ले जाया करती थी। यह वही तो नहीं ?'

सुदर्शन—'वही है।'

सुजान—'बहुत अच्छा हुआ। अपराधी पकड़े गये। सजा पायेंगे। बुरा मानने की क्या बात है !'

सुदर्शन—'मैंने उसी लड़की से शादी की है।'

रूपसिंह – 'बहुत बुरा किया।'

सुदर्शन—'बुरा नहीं किया। असल बात कोई नहीं जानता। वह लोग नरमाँस भक्षक नहीं है। यह एकदम झूठा इलजाम है।'

सुजान—'तुम ने ही तो हमसे कहा था कि लाशें उठकर जाती थीं।'

सुदर्शन—'मुझे आप धोका हो गया था।'

सुजान, रूप और सुदर्शन तीनों की दृष्टि लक्ष्मण पर पड़ी। उसने भी मन में समझ लिया कि सबका शुबहा उसी पर है।

उसने अपने मुँह पर मुहर लगा ली।

सुजान ने पूछा—'लक्ष्मण ! तुम इंटहरा के रहने वाले हो ; इस विषय में कुछ कह सकते हो ?'

उसने कानों पर हाथ रक्खा और अनजानकारी प्रकट की। दफ्तर जाने का समय आ गया था, बहाना करके चला गया।

सुदर्शन, सुजान और रूप तीन आदमी कमरे में रह गये।

सुदर्शन—'हैरानी है। यह साजिश किसने की है। यह किसी बुरे आदमी का काम है।'

सुजान—'अब भी तुम्हारी आंखें नहीं खुलतीं !'

रूपसिंह—'अब भी बुद्धि पर परदा पड़ा हुआ है ?'

सुदर्शन—'तुम्हारा शुबहा लक्ष्मण पर है। लेकिन जब तक सच्ची बात न मालुम हो जाये किसी को क्या कहा जाये ! और कैसे कहा जाये ! ऐसा कहना अन्याय है।'

सुजान—'इसी ने मन्दिर वालों पर मुकदमा चलाया होगा। उस दिन सुन गया था। भदोही वाले मुकदमा बाजी में बदनाम हैं। दस बीस सौ पचास किसी को दिये और मुकदमे बाज आदमी खड़े कर दिये। वहां यह कोई नयी बात नहीं है। देखना सुदर्शन ! संभल कर रहना। यह तुम्हारे फँसाने के लिये माया जाल रचा गया है।'

रूप—'मेरी समझ में तो यह आता है कि लक्ष्मण की दृष्टि उस लड़की पर रही होगी जिसे सुदर्शन ब्याह लाया है। मन्दिर वालों से खटपट हुई होगी। उन्होंने लड़की देने से इन्कार किया होगा। बदला लेने का यह झूठा मुकदमा खड़ा किया गया है। इसके सिवा और कोई बात नहीं है।'

सुदर्शन जानता था कि मुण्डभूषणी ने लक्ष्मण के साथ ब्याह करने से इन्कार कर दिया था लेकिन न महन्त ने ही

कुछ इशारा किया था न उसकी स्त्री ने। मन ही मन में वह बिसूर करता गया और एक कड़ी को दूसरी से मिलाकर नतीजा कायम करने लगा।

सुजान ने पूछा—'क्या करोगे ?'

सुदर्शन ने जवाब दिया—'बाबू दुर्गाचरन सिंह वकील को लेकर मैं आज ही जाऊँगा। परसों पेशी है। जाना जरूरी है! वह निर्दोष हैं! मेरी वजह से मुफ्त में फाँसे गये हैं। मेरा धर्म है कि मैं जाकर छुड़ाऊँ।'

रूप—'बेशक! ऐसा ही करो और ऐसा ही करना चाहिये। और इस जाल की बाबत क्या कहते हो।'

सुदर्शन—'आकर जवाब दूँगा। तब तक चुप बैठे रहो।'

# तीसरा अध्याय

## नरमाँस भक्षण का मुकदमा

राज बनारस में तीन जिले हैं—भदोही, चकिया और रामनगर। इन सब में रकबा और आबादी की अपेक्षा से भदोही सबसे बड़ा है। सरकारी कचहरियाँ ज्ञानपुर में हैं जो जिले के कलक्टर का सदर मुकाम है। मुकदमा इसी हाकिम के इलजास में पेश था।

सुदर्शनसिंह बाबू दुर्गाचरन सिंह वकील को दो सौ रुपये रोज फीस देकर और अपने साथ लेकर तार पहुँचने के दूसरे ही दिन ज्ञानपुर पहुँच गया। महन्त से मिलने की इच्छी थी। जेल के अफसर ने आज्ञा नहीं दी।

दूसरे दिन मुकदमा पेश हुआ। कलक्टर साहिब मुसलमान थे। सज्जन और न्यायप्रिय, निर्पक्ष और विशाल हृदय! मुल-

जिम हाजिर किया गया। सुदर्शन ने उसे देखा। महन्त की दृष्टि भी उस पर पड़ी। सुदर्शन की आंखों से आंसू बह निकले। इंटहरा के लोग मुकदमा सुनने के लिये टूट पड़े। इस भीड़ भाड़ ने हाकिम जिले पर सिद्ध कर दिया कि मुलजिम अपने आस पास के इलाकों में प्रतिष्ठित और सर्वप्रिय है।

नियमपूर्वक हलफ दिया गया। सरकारी वकील ने उसे मुकदमा चलाने की वजह सुनाई। मैजिस्ट्रेट ने केवल एक जुर्म कायम किया कि मुलजिम आदमी क्या मांस खाता है। या नहीं।'

उससे पूछा गया। महन्त ने कहा--'यह दावा एकदम झूठ और बे बुनियाद है।'

उसके इन्कार करने पर सात सरकारी गवाह पेश किये गये।

बाबू दुर्गाचरन सिंह वकील ने एक से जिरह करना शुरू किया:—

वकील—'तुम ने कभी महन्त जी को माँस खाते हुए देखा था ?'

गवाह—'नहीं।'

वकील—'फिर कैसे जानते हो कि यह आदमी का माँस खाते हैं ?'

गवाह—'मैंने सुना था।'

वकील—'किससे सुना था ?'

गवाह—'कहने वाला यहाँ नहीं है अन्य जगह है।'

वकील—'उसे बुला सकते हो ?'

गवाह—'नहीं।'

पहिली गवाही बे बुनियाद साबित हुई। दूसरा गवाह पेश हुआ।

वकील—'क्या तुम कह सकते हो कि यह पवित्रात्मा साधु आदमी का माँस खाते हैं ?'

गवाह-- हाँ ! मैं जानता हूं ।'

वकील–'किस तरह ? क्या तुम मठ में आते जाते रहते हो ?'

गवाह—'मैं आज तक कभी मठ में नहीं गया ।'

वकील-- फिर कैसे जाना ?'

गवाह--'औरों से सुना है ।'

वकील--'वह और कौन है ? क्या मठ के आदमी हैं ?'

गवाह--मठ से उन्हें कोई सम्बन्ध नहीं है । यह अफवाह है ।'

दूसरी गवाही भी व्यर्थ हुई । तीसरा गवाह कटघरे में आया ।

वकील--'तुम ने महन्त जी को कभी किसी को माँस के लिए मारते या कत्ल करते हुए देखा था ?'

गवाह—'नहीं ! मैंने कभी नहीं देखा ?'

वकील—'और किसी ने भी देखा ?'

गवाह—'नहीं ! मैंने इतना सुना था कि एक बार दरिया से लाश उठकर मन्दिर में गई थी ।' इस पर इंटहरा के लोगों में हलचल पड़ गई । शोरगुल होने लगा । कलक्टर साहेब ने बड़ी मुश्किल से उसकी रोकथाम की । गाँव वालों ने सफाई देनी चाही । यह नियम विरुद्ध जरूर थी लेकिन कलक्टर साहेब ने उसे स्वीकार कर लिया ।

कमलाकर साधू ने कमलाकृत को पेश किया--'हुजूर यह वही लाश है जिसमें गर्मी पाकर हम मन्दिर में उठा लाये थे । इसकी जिन्दगी बाकी थी जान बच गई और यह अब तक जीता जागता है ।'

गाँव वालों ने गवाही दी—'महन्त के जैसा पवित्रात्मा

और दयावान होना महा कठिन है। इस लड़के के जी जाने की बात हमारे गाँव और आस पास के गांव के बच्चे बच्चे को मालुम है। महन्त पर एकदम झूठा मुकदमा चलाया गया है।'

और सब ने एक प्रार्थना पत्र पेश किया जिसमें पाँच सौ आदमियों के दस्तखत थे। अदालत ने उसे स्वीकार कर लिया और मिसिल में शामिल करने की आज्ञा दी।

इसके बाद कमलाकृत के माँ बाप और सम्बन्धी पेश हुए जिन्होंने तसदीक की कि 'लड़का मर गया था। उसे मुरदा समझकर गंगा में बहा दिया था। हम सब उस लड़के को पहिचानते हैं।'

इनका बयान भी मिसिल में शामिल किया गया।

वकील ने गवाह से और जिरह की—'लाश ले जाने की यही एक घटना तुमने सुनी है या कोई और भी ?'

गवाह—'बस यही एक है। इसके सिवा मैं और कोई नहीं जानता।'

तीसरे गवाह के पांव उखड़ गये। चौथा हाजिर किया गया।

वकील—'तुम महन्त को अच्छा आदमी समझते हो या बुरा ?'

गवाह—मैंने सिवाय इस घटना के और कभी कोई बात महन्त जी के विरुद्ध नहीं सुनी। अगर कमलाकृत वही लाश वाला लड़का है तो उनके अच्छे होने में क्या सन्देह है।'

यह गवाही भी बेकार निकली। पाँचवां गवाह अदालत के सामने आया।

वकील ने उससे पूछा—'क्या तुम धर्म ईमान से कह सकते हो कि महन्त जी आदमी का मांस खाते हैं ? तुम अपने लड़के

के सर पर हाथ रखकर कहो कि यह आदमी मांस खाते हैं तब मैं तुम्हें सच्चा समझूँ।'

गवाह डर गया—'राम ! राम !! मैं ऐसा न करूँगा।'

यह गवाह भी अलग हुआ। छटवें की बारी आई:—

वकील— क्यों जी ! तुम मुलजिम को जानते हो ?'

गवाह—'जानता हूं।'

वकील—'वह कैसा आदमी है।'

गवाह—'बहुत अच्छा आदमी है।'

वकील—'फिर झूठी गवाही देने क्यों आये ?'

गवाह ने आँखों में आंसू भरकर कहा—'कलंक का टीका लगवाना था, वह लग गया। इसके सिवा और क्या कहूँ ?'

यह तो गवाही में कोई गवाही नहीं थी। सातवां गवाह बुलाया गया।

वकील—'तुम समझ बूझकर गवाही देने आये होगे। सच सच कहना। ओंकारनाथ का मन्दिर कसाई खाना है ? और महन्त जी कसाई हैं ?'

गवाह एकदम चुप रहा। उसने नीचे से सर तक नहीं उठाया। अदालत ने उसकी हालत नोट कर ली।

वकील—'तुम्हारे बाल बच्चे क्या कभी मन्दिर में पूजा करने जाते हैं ?'

गवाह ने समझा कि ऐसा न हो कि उसके बाल बच्चे भी अदालत में तलब किये जायें। वह सोचकर बोला—'नहीं, नही जाते हैं।'

वकील—'क्या वह जानते हैं कि वहाँ आदमियों को कत्ल किया जाता है।'

गवाह—'नहीं।'

वकील—'तुम भी कभी पूजा करने गये थे ?'

गवाह—'गया था।'

वकील—'तुमने किसी मनुष्य का बलिदान चढ़ते हुए देखा ? या वहाँ खंडग और भुजाली देखने में आई ?'

गवाह—'नहीं।'

वकील—'फिर कैसे कह सकते हो कि महन्त जी आदमी का मांस खाते हैं ?'

गवाह—'यह सब बे सर पैर की अफवाह और उड़ती हुयी खबर हैं।'

सातों गवाह जिरह में न ठहर सके।

वकील ने फिर बहस करना शुरू कर दिया—मुकदमा बे बुनियाद और सरासर झूठा है। मेरा मवक्किल एक प्रतिष्ठित और पवित्रात्मा साधू है जिसकी पवित्रता का सिक्का दो एक दुष्टों के अलावा सबके दिलों पर बैठा हुआ है। मैं अदालत से दरख्वास्त करूँगा कि मेरा मवक्किल आज ही छोड़ दिया जाये। पुलिस को धोका हुआ। मैं यह भी अर्ज करना जरूरी समझता हूँ कि झूठे गवाहों पर मुकदमा जरूर चलाया जाये। जिस बदमाश ने यह मुकदमा चल वाया है उसका नाम परदे में है। उसका पता मुशकिल बात नहीं है। गवाहों से इतना तो मालुम हुआ कि वह यहां नहीं है। मुकदमे के दौरान में वह तलब किया जा सकेगा और आप ही आप पता लग जायेगा कि क्यों इस झूठे मुकदमे से अदालत का अमूल्य समय नष्ट किया गया और उसकी जड़ में क्या बात है !'

मैजिस्ट्रेट ने महन्त जी से कहा—'अफसोस है आपको बड़ी तकलीफ हुई। आप बरी किये गये। क्या आप चाहते हैं क गवाहों पर मुकदमा चलाया जाये ?'

महन्त जी बोले—'मैं दुनियां में लोगों को फँसाने नहीं आया बल्कि छुड़ाने आया हूँ। जो होना था हो चुका। और लोग तो बिना किसी अपराध के मारे गये, जीते ही खाल खींची गई, सूली पर चढ़ाये गये, मेरे भाग्य में इतना ही कष्ट था। अदालत का धन्यवाद है कि उसने झटपट मुकदमे को शुरू करके मुझे बरी कर दिया नहीं तो यह बहुत दिन लेता। मैं मुकदमा चलाने की राय कभी न दूँगा। यह आप अपने कर्मों का फल पायेंगे।'

अदालत ने कहा—'आपकी दयालुता प्रसंशा योग्य है। असली मुलजिम बचा जा रहा है।'

इसके बाद इलजास समाप्त हुआ। सब लोग खुश हुए। गवाह भी खुश थे कि सस्ते छूटे। सुदर्शन ने बाबू दुर्गाचरन सिंह वकील, महन्त जी और उनके सारे चेले और साथियों को साथ लिया और कूंढ़रोड स्टेशन से रेल पर सवार होकर इलाहाबाद लाया और अपने बँगले में महमान किया।

## चौथा अध्याय

### कुलरीत के अनुसार विवाह

मुण्डभूषणी बँगले में नहीं थी। महन्त की आँखें उसे खोज रही थीं। वह दिखाई नहीं दी।

सुदर्शन से पूछा—'मुण्डभूषणी कहां है ?' इसने जवाब दिया—'वह घर में माता जी के साथ है।'

'क्यों ?'

'यद्यपि आपने उसके हाथ में मेरा हाथ देकर पति और पत्नि तो बना दिया था लेकिन अभी तक कुलरीति के अनुसार

रस्म होना शेष है।'

'बहुत अच्छा किया लेकिन देर क्यों करते हो ?'

'अब आपके चरण कमल यहाँ आ गये हैं, सब कुछ हो जायेगा।'

दूसरे दिन दलथम्मन सिंह, उसकी स्त्री, मुण्डभूषणी मौहल्ले के बहुत से आदमी महंत के दर्शन के लिये आये। भेंट और चढ़ावे का ढेर लग गया। महन्त उदार चित्त, विशाल हृदय और उदासीन वृति का था। आज्ञा दी:—'सब गरीबों को बांट दो।' ऐसा ही किया गया। फिर भी बहुत हिस्सा महन्त जी के चेलों को मिला। सब लोग इस विरक्त साधू के दर्शन से प्रसन्न हुए।

दलथम्मन सिंह को भय था कि कहीं महन्त जी जल्द न चले जांयें, इसलिए पंडितों को बुलवाकर दुघड़िया लग्न का महूर्त्त पूछा और दूसरे ही दिन बँगले पर शादी की रस्म कर दी गई। सुजान सिंह, रूप सिंह और लछमण सिह सब बुलाये गए थे। मित्र सम्बन्धी, अफसर, कर्मचारी सबको निमन्त्रण दिया गया था और सब लोग सम्मलित थे।

सबके सामने शास्त्र की रीति से सनातन धर्म के अनुसार शादी की रस्म की गई। कमला कृत के बाप ने कन्यादान दिया। वह भी राजपूत निकला और कई रीति रस्म कमला कृत के हाथ से कराये गए। वह उस दिन से मुण्डभूषणी का धर्म भाई बना और सुदर्शन ने उसकी शिक्षा का प्रबन्ध अपने हाथ में लिया।

महन्त ने समय अनुसार उस समय मुण्डभूषणी और सुदर्शन को उपदेश दिया था उसका सारांश यहाँ इस तरह लेख बद्ध किया जाता है:—

'पहले पुरुष अकेला था। उसके सिवाय दूसरा कोई नहीं था। यह शब्द दो धातुओं से मिलकर बना है—(पुर=शरीर) और ( षस=रहना )। इसलिये जो शरीर में रहे उसी को पुरुष कहा जाता है। बिना शरीर वाले को पुरुष कहना मूर्खता है। उसे अकेले रहने से अरुचि हुई।

'उसने सोचा—मैं अकेला हूं। एक से अनेक हो जाऊँ। यह भाव उसका तप था। इस तप में वह तपा और तप कर उसने अपने आपको दो कर दिया। एक पुरुष बना दूसरी प्रकृति बनी। एक नर दूसरी नारी और वह विलास करने लगे।'

'उनके मेल से सन्तति उत्पन्न हुई। सन्तान की दृष्टि से वह जन, जनक, जनाने वाला बाप कहलाया और उसकी यह सन्तान जिस मण्डल ( लोक ) में बसी वह जन लोक के नाम से प्रसिद्ध हुआ।'

इसी पुरुष से ऊँचे के ३ लोक बने—(१) सत् लोक (२) तप लोक (३) जन लोक, यह रचना के ऊँचे स्थान हैं। सत् अस्तित्व है। तप चित् है और जन आनन्द है।'

'उसे ख्याल आया मैं महः ( महत ) या बड़ा हूँ क्योंकि सन्तान वाला हूं। उसकी सन्तान ने यह भाव उससे लिया और वह भी बड़ी महिमा वाले, महत बुद्धि वाले, तेजस्वी हो गये। इनके रहने का मण्डल महर्लोक कहलाता है। यह ऊँचा स्थान बड़ाई और महत्व की दृष्टि से उलट फेर की जगह है। इसमें उस पुरुष के नीचे जगत् की रचना की धार फूट निकली। वह उल्टी है और प्रतिबिम्बित है। ऊपर की रचना सीधी और नीचे की रचना उल्टी है। झील के किनारे के पेड़ और वृक्षों को देखो। ऊपर सीधा वृक्ष खड़ा है। नीचे पानी में उसकी छाया उल्टी दिखलायी देगी।

इस पर विचार करो तो तुमको उल्टी सुल्टी रचना का पता लग जाये। यह रचना भी पानी में हुई है। और उसी में बीज की छाया पड़ी है। आदमी की सूरत देखो जो उल्टा वृक्ष है। पेड़ की जड़ तो जमीन में रहती है और आदमी की जड़ जो उसका सर है आकाश में रहती है इत्यादि इत्यादि।

'बिम्ब और प्रतिबिम्ब साथ साथ चलते हैं। जन लोक की छाया स्वःलोक है। तप लोक की छाया भुवः लोक है और सत लोक की छाया भूर्लोक है।'

'ऊपर के तीन लोक उच्च अथवा दिव् कहलाते हैं और नीचे के तीनों लोक निचले अथवा भू कहलाते हैं और महलोक दोनों के बीच की बिचली कड़ी है। इस तरह सात लोक बन गये और यह पुरुष प्रजापति होकर इस जगत को भोगने लगा।'

'ऐ मुण्डभूषणे और सुदर्शन! तुम भी आज से अपने घरों के पुरुष और प्रकृति बने हो। इस आदर्श अथवा इष्ट पद को सामने रखकर सत असत, चेतन्य जड़, बिम्ब और प्रतिबिम्ब को निर्षाप्रिय बन कर भोगते हुए बड़ाई को प्राप्त हो और सत तप जन की महिमा की उपलब्धि करो। यह जगत तुम्हारा रूप हो और तुम जगत के रूप बन जाओ। तुम्हारा योग और भोग साथ साथ चले जिसमें जीवन पूर्ण हो जाये, अधूरा न रहे।'

व्याख्यान संक्षेप था। किसी ने समझा किसी ने नहीं समझा क्योंकि उसमें उपनिषदों का सार भरा हुआ था। महन्त ने दोनों के सिरों पर हाथ रखकर आशीर्वाद दी—ॐ तत् सत् (वह सत् है) ॐ तत्त्वमसि (तुम वही हो) ॐ सोऽहमस्मि (मैं वही हूं) ॐ सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म (सत्य ज्ञान है अनन्त ब्रह्म है) ॐ परिज्ञानं ब्रह्म (परिज्ञान ही ब्रह्म

है ) ॐ ब्रह्मास्मि ( मैं ही ब्रह्म हूँ ) ॐ खल्विदं ब्रह्म ( यह सब ब्रह्म ही ब्रह्म है ) ॐ एको ब्रह्म द्वितियो नास्ति ( एक ही ब्रह्म है और दूसरा कोई भी नहीं है । ) तुम दोनों ऐसा विचारते हुए जीवन के सत् भोग को भोगो जिसमें तुम्हारा सच्चा कल्याण हो ।'

इसके पीछे आये हुए अतिथियों का आदर सत्कार किया गया, खाना खियाला गया, पान इलायची और छालियाँ बाँटी गईं। ब्राह्मण भिक्षुकों और गरीबों को दान दिया गया। इस तरह वह पति और पत्नि बनाये गये। फिर सब लोग अपने अपने घरों को चले गये।

# पांचवाँ अध्याय

## भांड़ा फूटा

दलथम्मन सिंह सदैव इस सोच विचार में रहता था कि उसका लड़का बहुत यशस्वी हो। जब लेजिस्लेटिव एसेम्बली के चुनाव का समय आया, उसकी दौड़ धूप और युक्ति से सुदर्शन सिंह को और लोगों से अधिक वोट मिले। वह मेम्बर चुन लिया गया। मिनिस्टर बनने के लिये यह पहिली मंजिल समझी गयी थी। इसमें बिला रोकटोक सफलता प्राप्त हुई और इससे आगे वृद्धि और उन्नति करने की आशा दृढ़ हुई।

दलथम्मन सिंह ने बेटे के मेम्बर लेजिस्लेटिव एसेम्बली के चुनाव के अवसर पर खुशी मनाई। उत्सव में दावत का भी प्रबन्ध था। बहुत से रईस और अफसर खाने के बाद चले गये थे। केवल विशेष विशेष लोग रह गये थे। इतने में लक्ष्मण

सिंह हांपता कांपता हुआ आया। सुजानसिंह और रूपसिंह अब तक उपस्थित थे। पूछा—'क्या बात है ?'

उसने कहा—'सुदर्शन से कुछ कहना है। उस पर बड़ी भयंकर आपत्ति आ गई है। अगर भाग जाये तो बच जायेगा। थोड़ी देर पीछे भागना असम्भव हो जायेगा।'

उसकी सूरत से परेशानी बरसती थी। दोनों मित्रों ने निमन्त्रित मेहमानों को खबर नहीं होने दी। सुजानसिंह उसे चुपके दलथम्मन सिंह के पास ले गया क्योंकि सुदर्शन मेहमानों की खातिर में लगा हुआ उनसे घिरा हुआ था। दलथम्मन की आँखों में इसके देखते खून उतर आया क्योंकि वह महन्त के मुकदमे का हाल सुन चुका था और पहिले से क्रोध में भरा हुआ था। इसे देखते ही आग बबूला बन गया। सुजानसिंह ने चुपके से दलथम्मन सिंह के हाथ को पकड़ कर हिलाया। वह समझ गया कि यह समय क्रोध करने का नहीं है। फिर भी उसने क्रूर दृष्टि से देख कर क्रोध के साथ पूछा—'क्या है ? तुम क्या चाहते हो ?'

लक्ष्मण सिंह ने जवाब दिया—'मैं सुदर्शन सिंह को देखना चाहता हूँ और उन्हें खबर देना चाहता हूँ कि वह आपत्ति में पड़ गये हैं।'

दलथम्मन सिंह—'आपत्ति ! कैसी आपत्ति ! मेरे जीते जी मेरा इकलौता बेटा आपत्ति में पड़े ! यह कभी नहीं हो सकता।'

लक्ष्मण सिंह—'हाँ ! आपका इकलौता लड़का खतरे में है। सुदर्शनसिंह को इसी समय भगा दिया जावे नहीं तो वह पकड़ लिया जायेगा और छूटना कठिन होगा।'

दलथम्मन के होश के तोते उड़ गये।

इतने में रूपसिंह सब-इन्सपेक्टर पुलिस को साथ लिये हुए

दलथम्मनसिंह के पास पहुंचा। सब-इन्सपेक्टर पुलिस ने सलाम करके कहा—

'ठाकुर साहिब! मैं बहुत लज्जित हूँ कि ऐन दावत के समय मुझे यहां भेजा गया। मेरा आना अत्यन्त अप्रिय है लेकिन क्या करूँ! मुझे अपने कर्त्तव्य पालन की मजबूरी है।'

दलथम्मन सिंह ने पूछा—'बात क्या है?'

पुलिस इन्सपेक्टर न जवाब दिया—'मुझे ठाकुर सुदर्शन सिंह साहब से काम है।'

वह बुलाया हुआ उसी समय आ गया। इन्सपेक्टर ने उसके हाथ में एक कागज दिया। पढ़ते ही हैरान रह गया। उसने दलथम्मन सिंह से कहा—'मुझ पर जाल साजी का जुर्म लगाया गया है। यह गिरफ्तारी का वारंट है।'

कहां क्या था! कहाँ क्या हो गया! रंग में भङ्ग आ गया।

दलथम्मन—'कभी हो नहीं सकता कि मेरा लड़का जाल बनाये। इसमें गलतफहमी होगी!'

इन्सपेक्टर—'मुझे तो जो कुछ हुक्म है उसकी तालीम जरूरी है गलतफहमी की सफाई अदालत में होगी!'

सब के मुँह पर हवाइयां उड़ने लगीं लेकिन बाहरे युवक और भोले भाले सुदर्शन! उसके माथे पर शिकन तक नहीं आई। कागज पर दस्तखत कर दिये। इन्सपैक्टर से बोला—'चलो जहाँ ले चलना चाहते हो लेचलो, मैं चलने को तैयार हूँ'

रूपसिंह ने इस दुर्घटना की खबर मेहमानों के कानों तक नहीं पहुँचने दी। उनके खाने पीने आगत स्वागत का प्रबंध सुजानसिंह को सोंप कर आप इन्स्पैक्टर और सुदर्शनसिंह के साथ बाहर आया। दो और कान्सटेबुल बाहर खड़े थे! यह सब मिलकर कोतवाली में आये। दलथम्मन से न रहा गया।

वह भी साथ साथ चला आया। कोतवाली मुहल्ला अतर सुइया के पास थी। सुदर्शन रात भर उसी जगह हिरासत में रहा। सुबह के समय दलथम्मन बाबू दुर्गाचरनसिंह वकील को साथ लेकर मैजिस्ट्रेट जिला के बंगले पर गया। वह वहां का प्रतिष्ठित और प्रभावशाली रईस समझा जाता था। पचास हजार की जाती जमानत पर सुदर्शन को छुड़ा लाया।

आसमान से यह गोला आसमानी बला की तरह उसके सर पर गिरा। इलजाम यह था कि सुदर्शन ने जाली दस्तखत बनाकर बैंको से रुपये निकाल लिये थे।

दोस्तों को इस बात की खबर थी। लक्ष्मण तो फिर उसी रात से इस तरह गायब हुआ कि सुदर्शन को आकर अपनी सूरत नहीं दिखाई। वह आप इन्स्पेक्टर के साथ आया था कि सुदर्शन को खबर देकर उसको छिपा दे या भगा दे। देर हो जाने के कारण वह न तो उससे कुछ कह सका न अपनी राय दे सका। उसका मन्तव्य यह था कि सुदर्शन उसके पन्जे में अब तक कठपुतली बना हुआ है। वह जो कहेगा यह मान जायेगा और अगर कहीं वह भाग गया तो मुकदमा बिगड़ जायगा और किसी के संभाले नहीं संभलेगा। इसमें वह असफल रहा। यह दो धारा छुरी या दो मुंहा सांप था। उधर महन्त को बरबाद करना चाहा था इधर सुदर्शन को। महन्त को तो अदालत ने साफ छोड़ दिया लेकिन उसे उम्मीद थी कि सुदर्शन पर उसका दाव चल जायेगा।

सुजान और रूप दोनों मिलते रहे और इस प्रयत्न में थे कि किसी प्रकार उनका दोस्त नेक नामी के साथ इस इलजाम से बरी हो जाय। बहुत दौड़ धूप की. जमीन आसमान के कुलाबे मिलाये वकीलों से मिले, राय ली। जुर्म सख्त था। सबने

कहा कि सुदर्शन ने जाली दस्तखत बनाये हैं, उसका छूटना कठिन है। सिर्फ बाबू दुर्गाचरनसिंह वकील ऐसे थे जो इस राय में सहमत नहीं थे। वह सुदर्शन को जानते थे और उसे सच्चा और ईमानदार आदमी समझते थे लेकिन मामला कुछ ऐसा नाजुक होगया था कि उनकी बुद्धि भी चकित थी।

## छटवां अध्याय

### दैवी सहायता

मनुष्य प्रयत्न ईश्वर सहायता! सुजान और रूप दोनों ने सिर तोड़ और अनथक परिश्रम किया। बिचारे रात और दिन न दिन को दिन न रात को रात समझते थे। बंगले के आदमी जो चैक ले गये थे निर्दोष निकले। चैक उन्हें लक्ष्मण ने दिया था। वह गये और रुपये ले आये। उनका केवल इतना ही सम्बन्ध था। लक्ष्मण उनसे ऐसे काम लिया करता था। यह मामूली-सी बात थी। सुदर्शन का जमा खर्च उसी के हाथ में रहता था। उसने आप नौकरों को ताकीद कर रक्खी थी कि लक्ष्मण जो कहे वह बराबर किया करो। रूप और सुजान बार बार पूछते रहे कि—'क्या तुम किसी का नाम बता सकते हो जो जाली चैक लाये हो?' यह पढ़े लिखे नहीं थे। इनका जबाब साफ था—'हमको चैक दिये गये। क्या खबर यह असली थे या जाली! हम गये, रुपये ले आये। चैक लक्ष्मण ने दिये। वही इमारत के काम के लिए रुपये मंगवाया करता था।'

जब इधर से निराशा हुई वह अपने नौकरों के पीछे पड़े। डराया धमकाया, पुलिस की सख्ती और कैद जाने का भय दिलाया, लालच दी। एक नौकर उनमें से कमजोर निकला।

उससे पता लगा कि लक्ष्मण ने उन्हें लालच दी। वह चैक बुक से कागज फाड़ कर ले जाते थे। फिर क्या था! दूसरे नौकरों ने भी भयभीत होकर भाँडा फोड़ दिया। लेकिन इससे हो क्या सकता था! अदालत उनकी गवाही को कब सच मानने लगी थी! फिर भी इन नौकरों को उन्होंने गवाही के लिए तैयार किया और उन्हें विश्वास दिलाया कि अगर वह अदालत में चलकर इकरार कर देंगे तो उन पर मुकदमा न चलाया जायेगा।

फिर इनका ध्यान लक्ष्मण के नौकरों की तरफ गया। उन पर भी किसी न किसी तरह प्रभाव डाला गया। लक्ष्मण का सलूक उनके साथ अच्छा नहीं था। कई कई महीनों की तनख्वाहें अड़ गई थीं। कभी कभी वह बुरी तरह से मारपीट भी किया करता था। इन्हीं दिनों में उसने एक नौकर को मारा था। वह बदला लेने की फिक्र में हो रहा था। इनके हत्थे चढ़ा और उसी के साथ इन्होंने दूसरे नौकरों को भी फांस लिया। यह सच है भले मनुष्य ऐसा काम नहीं करते लेकिन इनको तो सुदर्शन के छुटकारे की पड़ी थी। ऐसे समय में शुभ और अशुभ कर्मों की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। सुजान और रूप ने इनकी मुट्ठी भी खूब गर्म की और उन्हें ढारस दी कि अगर नौकरी छूट गई तो यह और जगह अधिक तनख्वाह पर नौकर करा देंगे। यह उनके भर्रे में आ गये।

एक दिन मौका पाकर यह नौकर लक्ष्मण के मेज और सन्दूक से कागज उठा लाये। सुजान और रूप ने उन्हें देखा भाला। दो किताबें उनके हाथ लगीं—एक नोट बुक जिसमें वह अपने हिसाब किताब याददाश्त के तौर पर रखता था। उसके अन्दर चैकों के नम्बर सुजानसिंह और रूपसिंह के नाम

से दर्ज थे ! होने वाली बात ! लक्ष्मण को क्या मालुम था कि यह बेपरवाही उसके लिए कभी घातक हथियार बनेगा। यह निज की वस्तु थी। इसका मन्तव्य केवल याददाश्त से था। दूसरी एक और किताब थी जिसमें उसने रूपसिंह सुजानसिंह और सुदर्शनसिंह के दस्तखत बनाने का अभ्यास किया था। इस किताब के पहिले पेज पर उसका नाम लिखा हुआ था।

सुजान और रूप ने इन दोनों को तो अपने पास रख लिया, बाकी कागज लौटा दिए। नौकरों ने जहां का तहां लेजा कर रख दिया। लक्ष्मण को खबर तक न हुई कि उसके घर में डाका पड़ गया है।

लेकिन आया यह किताबें अदालत में पेश हो सकती थीं या नहीं इसके विषय में राय लेना था। फिर दलथम्मन को किस तरह भेदी बनाया जाये !

सोचते सोचते यह समझ में आया कि लक्ष्मण का एक नौकर उसे दलथम्मन के पास ले जाये और बाबू दुर्गाचरन सिंह से राय पूछी जाये।

पेशी की तारीख के अब सिर्फ दो दिन बाकी थे।

यह नौकरों को साथ लिए हुए दलथम्मन के घर पहुँचे। बाप बेटे दोनों उदास बैठे हुए बात चीत कर रहे थे कि किस तरह यह बला टले। इनमें से किसी को बचने की आशा नहीं थी।

यह पहुंचे। दलथम्मन से अकेले मिलकर आने का कारण समझाया और फिर उसके सामने नौकरों से कहलवाया 'कि वह लक्ष्मण की बदसलूकी से तंग आये हुए हैं, फौजदारी में जाने के लिये तैयार हैं। उसने कई महीने से तनख्वाह नहीं दी। इसकी नालिश दीवानी में करेंगे।'

दलथम्मन ने दोस्तों की इस कार्यवाही पर प्रसन्नता प्रगट की।

सब की यह राय हुई कि जिस नौकर को लक्ष्मण ने मारा पीटा है, उसे चोट भी आई है। वह आज ही जाकर पुलिस में रपट लिखाये और पेशी के दिन फौजदारी में इस्तगासा पेश करे।

दलथम्मन ने इन नौकरों को अपने विश्वासपात्र आदमियों के द्वारा सौ रुपये दिलवाये जो उनके आंसू पोंछने और राह पर लाने की सच्ची युक्ति थी और फिर जख्मी नौकर को उसी समय रपट लिखाने के लिये थाने में भेजा! वहां से उसे दावा करने की आज्ञा मिली। वह कागज उसने लाकर दिखा दिया।

फिर इन नौकरों को तो लौटा दिया गया और दोनों दोस्त बाबू दुर्गाचरन सिंह के घर पहुँचे। उन्हें दलथम्मन के यहाँ लाये। जिस समय वकील ने लक्ष्मण की दोनों किताबें देखीं खुश हो गया, कहने लगा. 'अब सुदर्शन बच जायेगा। यह दैवी सहायता है। यह किताबें इ हीं नौकरों की मारफत अदालत में पेश हों और सब काम मैं कर लूँगा।'

वकील साहिब तो मामूली राय देकर चले गये। दलथम्मन सुजान और सुदर्शन आपस में सम्मति करने लगे कि यह किताबें कैसे और किस तरह अदालत में पेश हों। सुजान ने कहा—'काम इस तरह पर हो कि साजिश न पाई जावे। रूप-सिंह बोला—'यह काम उसी दिन हो जिस दिन सुदर्शन की पेशी हो।'

दलथम्मन इसके विरुद्ध था। उसने राय दी—'अभी पेशी के लिये एक दिन बीच में है। कल ही क्यों न यह लोग अपना दावा दायर करें जिसमें दूसरे दिन पेशी के समय वकील लक्ष्मण सिंह को मुलजिम करार दे सकें। इस पर देर तक

बहस होती रही। आखिर में सब ने दलथम्मन की राय मान ली।

सुजान—'इस मामले में वकील साहेब से क्यों न राय ली जावे।'

दलथम्मन—'सही है। इस मुहल्ले में बाबू श्याम किशोर वकील रहते हैं। उन्हें बुला लो। आज ही वकालत नामा पर दस्तखत करदें और उनका मुहर्रिर आज ही इस्तगासा लिख दे।'

सुजानसिंह—'दावे पर मुस्तगीसों का दस्तखत होना जरूरी है।'

रूपसिंह—'लक्ष्मण सिंह अब अपने मकान पर होगा। वह काम काज में लगे होंगे। उनका आना सम्भव हो सकता है।'

दलथम्मन सिंह—'जैसे तुमने सब कुछ किया वैसे ही यह भी करना होगा। समय थोड़ा है जो होना हो आज ही हो।'

सुजानसिंह—'उनको बुलाने कौन जाये।'

रूपसिंह—'जिसने पहिले बुलाया था उसी की मारफत बुलाओ।'

दलथम्मन सिंह—'मेरी समझ में तो यह आता है कि तुम दोनों जाओ और साथ ही तुम्हारा विश्वासी आदमी भी साथ रहे। तुम तो लक्ष्मण को जाकर बुरा भला कहो कि ऐसी आपत्ति के समय वह सुदर्शन की खबर क्यों नहीं लेता? और तुम्हारा आदमी नौकरों में मिलकर आज ही उन्हें नौकरी छोड़ने पर उकसाये। वह अपनी तनख्वाहें माँगें। लक्ष्मण गुस्से में आयेगा, मार पीट करेगा। यह उसकी आदत है और यह कार्यवाही भी हमारी भलाई की होगी।'

सुजान सिंह—'अदालती मामले बड़े टेढ़े होते हैं। एक

ही दिन में कई वारदातों का होना सन्देह उत्पन्न करेगा। ऊँट किस करवट बैठे ! कौन कह सकता है।'

रूपसिंह—'सच बात है।'

दलथम्मन सिंह—'अब सोचने का समय नहीं है। किसी तरह दोनों कागज अदालत में पेश हो जांय ! काम इनसे है। किसी युक्ति से सुदर्शन बरी हो जाये, यही मुख्य बात है।'

समय थोड़ा था। काम बहुत करना था। इसी कार्यवाही में सारा दिन खत्म हो गया। अधिक सोच समझ को अवसर नहीं था। निराशा की घनी अवस्था में आशा की झलक दिखलाई दी। तीनों की दृष्टि इसी पर थी। इसी एक विचार ने चित्त को हर तरफ से घेर कर अपनी ओर आकर्षित कर रक्खा था।

दोनों उठे, लक्ष्मण के घर पहुँचे। वह मकान ही पर था। उससे मिले। सुजान ने कहा— वाह भाई लक्ष्मण ! तुम तो सुदर्शन के मित्र बने थे। अब ऐसे बहके कि उसके पास तक नहीं फटकते !'

लक्ष्मण—'मैं क्या करूँ ! वह परले सिरे का हटीला आदमी है फिजूल खर्ची की आदत इतनी बढ़ गयी कि वह संभाले नहीं संभलती।'

रूपसिंह— 'यह तुम्हारा धर्म था कि उसे समझाते बुझाते रहते न कि आपत्ति के समय आँख बदल ली। यह तोता चश्मी किस काम की।'

लक्ष्मण—'बहुत समझाया बुझाया लेकिन कोई माने भी तो !'

सुजान—'दोस्त वह है जो आड़े काम आये।'

लक्ष्मण—'मुझे ऐसे दोस्त की दोस्ती से लज्जा आती है।'

रूप—'लज्जा की बात तो अवश्य है।'

लक्ष्मण—'जब घर का रुपया बरबाद कर चुका जाली दस्तखत बनाने की सूझी।'

सुजान—'सब बरबाद कर चुका। क्या उसके पास कुछ नहीं रहा?'

लक्ष्मण—'होता तो यह नौबत क्यों आती।'

रूप—'बाप तो धनाढ्य है।'

लक्ष्मण—'उसने बाप की सम्पत्ति पर भी बहुत कुछ हाथ साफ कर लिया है। जालसाजी की आदत घर ही से पैदा होती है।'

सुजान—'हम क्या जानें! तुमको अधिक मालूम है। उसका हिसाब किताब तो तुम्हीं रखते थे।'

लक्ष्मण—'तभी तो मैं जानता हूं वरन् कैसे जानता।'

सुजान—'तो क्या उसके बचने की कोई आशा नहीं है?'

लक्ष्मण—वकीलों की राय में अब वह नहीं बच सकते।'

रूप—'तब ही तो तुम कनाई काट कर अलग थलग हो गये।'

लक्ष्मण—'अगर मैं ऐसा न करता तो तुम्हीं बताओ मैं क्या करता।'

सुजान—'अफसोस है। भाई हमारी तो यही प्रार्थना है कि वह किसी तरह बचे। आखिर वह हमारा मित्र है।'

लक्ष्मण—तो प्रार्थना करो। अगर प्रार्थना ही सब कुछ होती तो वकील बैरिस्टर जज और अदालत से काम लेने की किसे जरूरत थी!'

वह गपशप कर रहे थे। इतने में इसके विश्वास पात्र आदमियों ने लक्ष्मण के नौकरों को खूब पट्टी पढ़ाई। उनकी मुट्ठी भी पहिले ही से गर्म हो चुकी थी। वह उसके दम झांसे में आ

गये। सुजान और रूप के सामने उससे अपनी कई महीने की तनख्वाहें मांगने लगे।

यह बिगड़ा। उन्हें बुरा भला कहने लगा। यह तो अवसर पाकर वहाँ से खिसक कर अतुरसुया चले आये। थोड़ी देर पीछे लक्ष्मण के नौकर भी नौकरी छोड़कर वहां आ पहुँचे।

रात हो गई थी। रूपसिंह ने अपनी ओर से उसके खाने पीने का प्रबन्ध किया। कुछ रुपये भी दिये और नौकरी की भी आशा दिलाई।

फिर श्याम किशोर वकील बुलाने पर अपने मुहर्रिर के साथ आये। इस्तगासा लिखा गया, जिसने लक्ष्मण का दुर्व्यवहार, मार पीट, जालसाजी, बदनीयती इत्यादि सब का वर्णन था। साथ ही उन दोनों किताबों का हवाला भी दिखाया जो नौकरों ने जमीन पर पड़ी पाईं और उसकी बदनीयती के सबूत में इस्तगासे के साथ नत्थी कर दिया।

दूसरे ही दिन यह इस्तगासा भी किताबों के साथ अदालत में पेश किया गया। रूपसिंह और सुजानसिंह ने साथ रहकर इसकी कार्यवाही कराई और दफ्तर के कर्मचारियों को दे दिला कर उनकी नकलें भी तुरन्त ले लीं।

इधर से संतुष्टि हो गई।

# सातवां अध्याय

## पेशी

मुकदमा अदालत में पेश हुआ। ठट के ठट आदमी जमा थे। इस मुकदमे में भी बाबू दुर्गाचरन सिंह वकील थे। इन पर सब का विश्वास था। यही अकेले काफी समझे गये थे।

और वकीलों को जरूरत नहीं हुई।

अदालती कार्यवाही शुरू हुई। सुदर्शन सिंह को जुर्म सुनाया गया।

जब सब कुछ कायदे के अनुसार हो चुका सुयोग्य वकील ने जबाब पेश किया और अदालत से कहा—'ठाकुर सुदर्शन सिंह एकदम निर्दोष हैं। यह लेजिसलेटिव एसेम्बली के मेम्बर भी चुने जा चुके हैं और शुद्ध और विशाल हृदय के आदमी है। इस मुकदमे के चलाने में गलती हुई है। मुलजिम तो कोई और है और यह यों ही फाँस लिये गये हैं।'

अदालत को सुनकर आश्चर्य हुआ, पूछा—'मुलजिम कौन है?'

वकील—'मुलजिम लक्ष्मणसिंह है जो इनका विश्वासपात्र मित्र बना हुआ था। उसी ने इनके दस्तखत बनाये, चैक घरों से चोरी कराये, उन पर इनके दस्तखत बनाये, रुपया लिया और गबन किया। बेहतर हो कि अदालत से अभी उसकी गिरफ्तारी का वारंट जारी हो वरन् उसके आदमी यहाँ मौजूद हैं, खबर पाते ही वह भाग जायेगा और फिर उसका हाथ आना कठिन होगा।'

अदालत—'आपके पास उसके मुलजिम होने का सबूत है?'

वकील—'कल के दिन उसके विरुद्ध इसी अदालत में इस्तगासा दायर हुआ है। उसकी दो किताबें भी शामिल हैं। एक में वह अपनी याददास्त दर्ज करता था, दूसरी पर वह सुदर्शन, रूप और सुजान के जाली दस्तखत बनाने की मश्शाकी किया करता था। अचानक से वह मुस्तगीसों के हाथ लगी।'

अदालत ने उसी समय मिसिल तलब की। दोनों किताबों को गौर से देखा। वकील ने उन सफहों को उलट पुलट कर

दिखलाया जिनमें चैकों के नम्बर, उनकी रकम और मालिकों के नाम नोट किये गये थे।

अदालत को इतमीनान हो गया। लक्ष्मण के नाम वारन्ट जारी हुये।

अदालत ने हुक्म दिया—'ठाकुर सुदर्शन सिंह जमानत पर है वही जमानत बहाल रहे। दौरान मुकदमे में वह जरूरत के समय अदालत में मौजूद रहे। इसके बाद अदालत ने दूसरे मुकदमे पेश होने की इजाजत दी। सुदर्शन अपने साथियों के साथ मोटर पर बैठकर बँगले पर चला आया।

सुजानसिंह ने पूछा—'अब तो तुमको निश्चय हुआ कि लक्ष्मणसिंह सांप था जिसे तुमने पाल रक्खा था। हम लोगों का कहना नहीं मानते थे वरन् यह दिन न देखना पड़ता।'

सुदर्शन—'जब तक अदालत अपना आखिरी फैसला न सुनाये तब तक मैं कुछ नहीं कह सकता।'

रूपसिंह—'अब भी तुम्हारी आंखें नहीं खुली?'

सुदर्शनसिंह—'मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि उसने अपने आपको सन्देहजनक बना लिया है।'

इनको आश्चर्य हुआ लेकिन दिल में उसके प्रेम की प्रतिष्ठा भी उत्पन्न हुई। यहाँ एक ऐसा आदमी मौजूद है जो इतनी आपत्ति उठाने पर भी अपने बनावटी दोस्त को बुरा भला कहना नहीं चाहता।

॥ चौथा भाग समाप्त ॥

नाविल

# पांचवां भाग

## पहिला अध्याय

### मुकदमे का परिणाम

लक्ष्मण उसी दिन गिरफ्तार होकर आया और हिरासत में ले लिया गया। रुपया तो उसके पास काफी था। गरीब नहीं था। सुदर्शन को उसने दोनों हाथों से लूटा था। यह झूठी बात नहीं थी लेकिन यह धरा धराया और बैंकों में जमा किया हुआ रुपया उसकी जमानत नहीं कर सकता था। कोई जामिन नहीं मिला। सिवाय सुदर्शनसिंह के और कोई उसे अच्छा नहीं समझता था। यह जमानत कर देता मगर अवसर और तरह का था। कई दिन हिरासत में रहा। एक हफ्ते के बाद पेशी की तारीख पड़ी।

पेशी के दिन कान्सटेबुल उसे हथकड़ी जकड़े हुये इजलास में लाये। वह कोई वकील भी न खड़ा कर सका। एक सच्चे मित्र के साथ कृतघ्नता करने के कारण कोई भी उसकी सहायता न कर सका। वह हर तरफ से मारा गया।

मजिस्ट्रेट ने मामूली अदालती कार्यवाही के खत्म होने पर पूछा—'क्या तुमने जाल बनाया ?'

लक्ष्मण—'मैंने नहीं बनाया।'

मैजिस्ट्रेट—'फिर किसने बनाया ?'

लक्ष्मण—'यातो सुदर्शन ने बनाया या किसी और आदमी ने।'

मैजिस्ट्रेट—'समझ कर साफ साफ जबाव दो। तुम पर कई इस्तगासे दायर हैं। यह पहिला मुकदमा है। दूसरे की तजवीज इसके बाद होगी। तुम पर चोरी करने या चोरी कर लाने का भी जुर्म लगाया जायेगा।'

लक्ष्मण—'मैंने चोरी नहीं की।'

मैजिस्ट्रेट—फिर लोगों के चैक तुम्हारे हाथ कैसे लगे ?'

लक्ष्मण—'चैक के लिए यह लाजिमी बात नहीं कि खास आदमी और खास किताब के चैक हों। यह काम अपनी चैक बुक से भी किया जा सकता था।

मैजिस्ट्रेट के हुक्म पर सुजानसिंह और रूपसिंह के नौकर पेश किये गये। इन्होंने हलफ देने के बाद बयान किया—'लक्ष्मण सिंह के बहकाने और रुपया पाने के लालच में हमने यह जुर्म किया था।'

मैजिस्ट्रेट—'अब क्या कहते हो ?'

लक्ष्मण—'यह झूठे हैं। इनके मालिकों ने इन्हें झूठी गवाही देने को उकसाया होगा।'

मैजिस्ट्रेट—'तो तुम को एकदम इन्कार है ?'

लक्ष्मण—'हाँ, बिलकुल इन्कार है।'

मैजिस्ट्रेट ने उसी समय उसकी दो किताबें तलब कीं। पूछा—'क्या यह तुम्हारी किताबें नहीं हैं ?'

लक्ष्मण जबाव देने से हिचकिचाया। उसकी नजर अपने तीन नौकरों पर पड़ी जो गवाही देने के लिए अदालत में हाजिर किये गये थे।

इनके देखते ही उसके होश उड़ गये क्योंकि यह उसकी

बहुत सी आदतों को जानते थे। फिर भी वह संभल गया और इन्कार कर बैठा कि यह हमारी किताबें नहीं हैं।'

मैजिस्ट्रेट ने उसी समय मुकदमे को मुलतवी करके हुक्म दिया—'पुलिस अभी जाकर मुजरिम की तलाशी ले और जिस कम्पनी में मुजरिम नौकर है उसके मेनेजर को गवाही में तलब किया जावे। तब तक यह हिरासत में रहे।'

और पेशी की तारीख दूसरे हफ्ते में मुकर्रर की।

उस दिन कम्पनी का मेनेजर भी हाजिर हुआ और तमाम कागजात लक्ष्मण सिंह के घर से उठा मंगाये गये। जहाँ जहाँ उसके दस्तखत थे मिलाये गये।

मैजिस्ट्रेट ने कागज और किताबें कम्पनी के मेनेजर के सामने रखकर पूछा—'क्या तुम पहिचान सकते हो यह किसके लिखे हुए हैं?' उसने तसदीक की। 'सब के सब लक्ष्मण के दस्तखत हैं, इसमें कोई शक नहीं है।'

मैजिस्ट्रेट – 'लक्ष्मण की चाल चलन की बाबत तुम्हारी क्या राय है?'

मेनेजर—'यह आदमी परिश्रमी है इसमें सन्देह नहीं है। लेकिन हिसाब किताब के मामले में इसने कई बार गोल मोल किया। इधर से कम्पनी को विश्वास नहीं है।'

मैजिस्ट्रेट–'कम्पनी ने इस पर मुकदमा क्यों नहीं चलाया?'

मेनेजर— हमारा कार बार तिजारती है। मुकदमा चलाने में अधिक नुकसान होता है। इसके सिवा जब ऐसी बातें हुयीं इसने रकमें भर दी। कम्पनी ने इस पर कई बार जुरमाना भी किया है और यही सजा काफी है।'

फिर मेजिस्ट्रेट ने मुलजिम से पूछा—'अपने बचाव के लिये क्या कहते हो?'

लक्ष्मण—'इस मामले में ऐसी शहादत एतवार के काबिल

नहीं है।'

मैजिस्ट्रेट समझ गया कि यह दिल का बहुत कड़ा आदमी है और अपना फैसला लिखकर उसे सेशन सुपुर्द किया जहाँ से उसे पांच साल कैद और पाँच हजार रुपया जुरमाने की सजा दी गयी।

यह इस मुकदमे का परिणाम हुआ। सुदर्शन बाल बाल बच गया।

# दूसरा अध्याय

## शेष घटनायें

लक्ष्मण कैद गया लेकिन सुदर्शन को आपत्ति में छोड़ गया। उसके हर काम में खराबी और बे कायदगी थी और हर बात में घाटा था। बहुत दिनों पीछे जाकर इनसे छुटकारा मिला और लक्ष्मण उसे ऐसा सबक पढ़ा गया जिसे वह जीवन पर्यन्त न भूला होगा। फिर भी उसने जीते जी कभी लक्ष्मण को बुरा भला नहीं कहा। जब कभी बात आई अपने ही आपको भूला हुआ समझता रहा।

(२) दलथम्मन सिंह की मनोइच्छा पूरी हुई। लेजिसलेटिव काउन्सिल की मेम्बरी के पीछे सुदर्शन सिंह मिनिस्टर आफ एजूकेशन ( Minister of Education ) हो गया। यही उसके बाप की दृष्टि में उन्नति का आदर्श था।

(३) मुण्डभूषणी का नाम कोई नहीं लेता। सब उसे मृणालिनी कहते हैं। वह खुश है। सुदर्शन के साथ उसकी शादी सोने में सोहागे का मेल निकली। वह बहुत बड़ी आज्ञाकारी बहू और शीलवती स्त्री निकली। इस समय उसके चार लड़के हैं जो अपने दादा-दादी के लाडले हैं।

(४) कमलाकृत कायस्थ पाठशाला कालेज में पढ़ रहा है माँ बाप तो उसे मुरदा समझकर गंगा में बहा आये थे। अब इससे उन्हें बड़ी बड़ी आशायें हैं।

(५) सुजानसिंह और रूपसिंह सुदर्शनसिंह के दाहिने और बायें हाथ समझे जाते हैं। इन्होंने अपने नौकरों के अपराध को क्षमा कर दिया। लक्ष्मणसिंह के नौकरों को रुपये भी दिये और नौकरियां भी दिला दी।

(६) महन्त ओंकारनाथ जब इलाहाबाद से गये थोड़े ही दिन पीछे मन्दिर का काम कमलाकार को सौंपा और आप ऐसे गुप्त हुए कि फिर पता नही लगा कि कहां है और कहां नहीं। सुदर्शन ने बहुत खोज कराई। कोई लाभ नहीं हुआ। लक्ष्मण के मुकदमे से इस साधू की आंखें खुल गई। चाहे जैसा आदमी हो संग दोष अवश्य लगता है। ओंकारनाथ के बहुत चेले चांटे नहीं थे। कमलाकार ने मन्दिर की पूजा पाठ को अपनी जीविका का आधार बनाया। सुदर्शन कभी कभी मुण्ड-भूषणी को साथ लेकर मन्दिर की यात्रा कर आता है और उसकी सहायता भी करता है।

(७) भीमसिंह मुण्डभूषणी का बाप जैसा पहिले था अब भी वैसा ही है। इसका स्वभाव नहीं बदला। न कभी वह इला-हाबाद में इससे मिलने आया और न उसे बुलाया। मुण्ड-भूषणी ने दो एक बार मां और भाइयों से मिलने मिलाने की इच्छा प्रगट की। उसने उसे कहला भेजा—'सुन देवी! न तू मेरी लड़की है न मैं तेरा बाप। न मेरे लड़के तेरे भाई हैं न मेरी स्त्री तेरी मां है। यह नाते उसी दिन टूट गये थे जिस दिन तू महन्त को सौंपी गई।'

(८) इंटहरा वाले महन्त अब तक ओंकारनाथ की महिमा

गाया करते हैं। इलाहाबाद के मुकदमे छुपाये गये लेकिन उन्हें उड़ती हुयी खबर मिलती ही गयी और जब कोई लड़का अनुचित काम करता है तो वहां के लोग ताड़ना देते हैं— 'देखना भाई! सब कुछ करना। लक्ष्मण की तरह विश्वा-घाती आत्मघाती और पितृ घाती न बनना। नेकी नेकरा बदी बदरा।'

(६) मन्दिर में प्रकाश और फौव्वारों का वह प्रबन्ध नहीं रहा जो महन्त ओंकारनाथ के समय था। डायनमा टूट गया, तार बिखर गये और कौन जाने गंगा की बाढ़ में कब तक इस पुराने मन्दिर को इस वर्तमान दशा में रहने दे क्योंकि सन् १६२५ ई० की बाढ़ ने उसकी नीव जड़ से हिला दी। ओंकार की माया ओंकार के साथ। यहाँ राम वहाँ रमा। यहाँ ॐ वहां उमा, अभी तक वह किसी न किसी शक्ल में मौजूद है।

ॐ शान्तिः, शान्तिः शान्तिः

॥ समाप्त हुआ ॐ नाविल ॥